Paper : BC-206 (i) Indian Financial System **Revised by : M.L. Singla**

Lesson No : 4

Money Market and its Instruments; Methods for the Note Issue in India

विषय सामग्री (Contents)

1. परिचय (Introduction)

2. उद्देश्य (Objective)

3. प्रस्तुतीकरण (Presentation)

   3.1 मुद्रा बाजार (Money Market)

      3.1.1 मुद्रा बाजार की परिभाषा (Definition of Money Market)

      3.1.2 भारतीय मुद्रा बाजार का ढांचा (Structure of Indian Money Market)

      3.1.3 विकसित मुद्रा बाजार का महत्व (Importance of Developed Money Market)

      3.1.4 मुद्रा बाजार की विशेषताएं (Features of Money Market)

      3.1.5 भारतीय मुद्रा के दोष (Weakness of Indian Money Market)

      3.1.6 मुद्रा बाजार के सुधार के सुझाव (Suggestions for Money Market Improvement)

   3.2 पत्र मुद्रा निर्गमन की रीतियाँ (Methods of Note Issue)

4. सारांश (Summary)

5. प्रस्तावित पुस्तकें (Suggested Readings)

6. नमूने के प्रश्न (Self Assessment Questions)

1. परिचय (Introduction)

इस अध्याय के पहले हिस्से में भारतीय मुद्रा बाजार का अध्ययन किया गया है तथा दूसरे हिस्से में पत्र मुद्रा निर्गमन की विभिन्न रीतियों की व्याख्या की गई है।

मुद्रा बाजार (Money Market)—मुद्रा बाजार से अभिप्राय उस संगठन से है जिसमें मुद्रा अल्प अवधि के लिए ली और दी जाती है। यह एक केन्द्र है जहाँ अल्पअवधि सम्पत्ति को बेचा और खरीदा जाता है। मुद्रा बाजार के द्वारा उधारकर्त्ता को अल्प समय के लिए कोष तथा उधार देने वाले के लिए अल्प अवधि निवेश प्राप्त होता है। मुद्रा बाजार में मुद्रा विनिमय-पत्रों, प्रतिज्ञा-पत्रों व अल्पकालीन सरकारी

प्रतिभूतियों का कारोबार किया जाता है। इन अल्पकालीन बिलों को मुद्रावत (Near Money) कहा जा सकता है।

भारतीय मुद्रा बाजार वह बाजार है जो कि अल्प अवधि ऋण में लेन-देन करता है। इसमें क्रेता एवं माँगकर्त्ता जनता, व्यावसायिक संस्थायें तथा सरकार होंगे। इसमें विक्रेता या पूर्तिकर्त्ता रिजर्व बैंक ऑफ इण्डिया (RBI) तथा विभिन्न संगठित एवं असंगठित वित्तीय संस्थान सम्मिलित होते हैं।

नोट निर्गमन (Note Issue)—शुरू से ही यह विवाद का प्रश्न रहा है कि नोट निर्गमन का कार्य सरकार करें या बैंकों द्वारा किया जाए। परन्तु अनुभव के आधार पर सभी अर्थशास्त्री इस बात से सहमत है कि नोट निर्गमन का कार्य एक मौद्रिक अधिकारी द्वारा किया जाना चाहिए अर्थात् सरकार द्वारा या केन्द्रीय बैंक द्वारा। यदि केन्द्रीय यह कार्य करता है तो उस पर सरकार का नियन्त्रण रहना चाहिए। भारत में नोट निर्गमन का कार्य भारतीय रिजर्व बैंक द्वारा किया जाता है।

2. उद्देश्य (Objective)

इस पाठ का उद्देश्य आपको भारतीय मुद्रा बाजार के ढांचे के साथ-साथ भारतीय मुद्रा बाजार की विशेषताओं से अवगत करवाना है। इसके साथ-साथ भारतीय मुद्रा बाजार के दोष एवं इसमें सुधार कैसे किया जा सकता है आदि का अध्ययन भी इस पाठ में किया जाएगा। इस पाठ के दूसरे भाग का उद्देश्य आपको भारत में पत्र मुद्रा के निर्गमन के विभिन्न तरीकों से भी अवगत करवाना है।

3. प्रस्तुतीकरण (Presentation)

इस अध्याय को दो भागों में प्रस्तुत किया गया है पहले भाग में भारतीय मुद्रा बाजार के ढांचे एवं इसके लक्षणों की व्याख्या की गई है। इसके साथ-साथ भारतीय मुद्रा के दोष एवं इसमें सुधार हेतु सुझाव दिए गए है तथा इस अध्याय के दूसरे भाग में भारत में नोट निर्गमन के विभिन्न तरीकों की व्याख्या की गई है।

3.1 मुद्रा बाजार (Money Market)

मुद्रा बाजार से अभिप्राय उस व्यवस्था से है जिसमें अल्पकालीन ऋण साखपत्रों के माध्यम से उधार लिए और दिए जाते हैं।

3.1.1 मुद्रा बाजार की परिभाषा (Definition of Money Market)

रिजर्व बैंक के अनुसार, ''मुद्रा बाजार अल्पकालीन मौद्रिक परिसम्पत्तियों का क्रय-विक्रय करने का केन्द्र होता है।''

(Money Market is the centre of dealings mainly of short term character in monetary assets—RBI)

प्रो. एस. एन. सेन के अनुसार, ''मुद्रा बाजार वह व्यवस्था है जिसमें अल्पकालीन ऋण साखपत्र जैसे वाणिज्य विनिमय बिल, अल्पकालीन सरकारी प्रतिभूतियाँ, बैंकर स्वीकृतियों के माध्यम द्वारा उधार लिए और दिए जाते हैं।''

(It refers to the organization for the lending and borrowing of short term funds through the use of such instruments as commercial bills of exchange, short term government securities, banker's acceptances etc.—S. N. Sen.)

3.1.2 भारतीय मुद्रा बाजार का ढांचा (Structure of Indian Money Market)

मुद्रा बाजार कोई सुगठित बाजार नहीं होता, परन्तु वह कई बाजारों से मिलकर बनता है, जिनमें से प्रत्येक विभिन्न प्रकार के अल्पकालीन ऋणों का कारोबार करता है। ऋण ही, प्रत्येक मुद्रा बाजार के विभिन्न छोटे-छोटे बाजार होते हैं। अतएव मुद्रा बाजार के गठन के बारे में नहीं कहा जा सकता। हम केवल भारतीय मुद्रा बाजार के प्रमुख अंगों का जो कि सारे मुद्रा बाजारों में आमतौर पर पाए जाते हैं, का वर्णन करेंगे। पहले भारतीय मुद्रा बाजार को निम्नलिखित चार्ट द्वारा व्यक्त किया गया है।

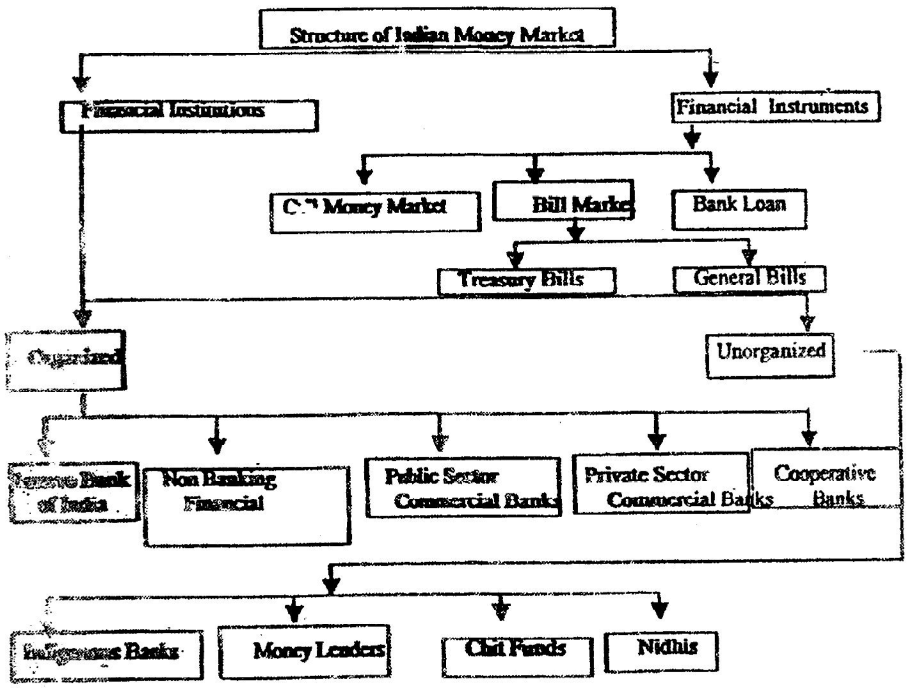

चित्र

भारतीय मुद्रा बाजार के ढांचे का अधयधन निम्नलिखित दो शीर्षकों के अन्तर्गत किया गया है—

A. भारतीय मुद्रा बाजार की वित्तीय संस्थायें (Financial Institutions of Indian Money Market)

B. भारतीय वित्तीय बाजार के वित्तीय उपकरण (Financial Instruments of Indian Money Market)

A. मुद्रा बाजार की वित्तीय संस्थायें (Financial Institutions of Money Market) :

भारतीय वित्तीय संस्थाओं को दो भागों में विभाजित किया जा सकता है—

1. संगठित क्षेत्र (Organized Sector), 2. असंगठित क्षेत्र (Unorganized Sector)।

1. **संगठित क्षेत्र (Organized Sector) :** संगठित क्षेत्र की वित्तीय संस्थाओं की क्रियाओं का समन्वय एवं नियन्त्रण सरकार/केन्द्रीय बैंक द्वारा किया जाता है इसमें निम्नलिखित संस्थाएँ शामिल हैं—

   (a) भारतीय रिजर्व बैंक (Reserve Bank of India)—यह देश का केन्द्रीय बैंक है तथा मुद्रा बाजार के संरक्षक के रूप में कार्य करता है और अर्थव्यवस्था में स्थिरता बनाए रखने के लिए मुद्रा एवं साख को नियन्त्रण में रखता है।

(b) वाणिज्यिक बैंक (Commercial Bank)—ये बैंक व्यवसाय और व्यापार की अल्पकालीन वित्त आवश्यकता की पूर्ति हेतु उन्हें अल्पकालीन ऋण देते हैं। विनिमय बिलों एवं खजाना बिलों की कटौती करते हैं। भारत में सार्वजनिक एवं निजी दोनों क्षेत्रों में वाणिज्यिक बैंक कार्यरत हैं।

(c) गैर बैंकिंग वित्तीय संस्थायें (Non-Banking Financial Institutions)—ये संस्थायें भी उध ार लेने वालों की अल्पकालीन वित्त आवश्यकता की पूर्ति करती हैं इनमें निवेश कर, बीमा कम्पनियाँ आदि शामिल हैं।

(d) सहाकरी बैंक (Co-operative Banks)—सरकारी बैंकों का कार्य मुख्यतः अपने सदस्यों (जिनमें ज्यादातर किसान एवं ग्रामीण हैं) की अल्पकालीन एवं दीर्घकालीन वित्त की आवश्यकता की पूर्ति करना है। भारत में इनका तीन स्तरीय ढांचा है। सबसे ऊपर राज्य सहकारी बैंक है तथा जिला स्तर पर केन्द्रीय सहकारी बैंक और स्थानीय स्तर पर ग्रामीण प्राथमिक सहकारी बैंक/शहरी सहकारी बैंक है।

2. **असंगठित क्षेत्र (Unorganized Sector)—**असंगठित क्षेत्र में कार्यरत वित्तीय संस्थाओं की क्रियाओं का समन्वय एवं नियन्त्रण मौद्रिक अधिकारियों (सरकार/भारतीय रिजर्व बैंक) द्वारा नहीं किया जाता। इनमें प्रमुख तौर पर देशी बैंकर, साहूकार, निधियाँ एवं चिट फंड आदि शामिल हैं।

B. मुद्रा बाजार के वित्तीय उपकरण (Financial Instruments of Money Market)

भारतीय मुद्रा बाजार में निम्नलिखित वित्तीय उपकरण शामिल हैं—

1. **अल्प सूचना ऋण बाजार (Call Money Market)—**अल्प सूचना ऋण बाजार से आशय अत्यन्त अल्पकालीन ऋणों के बाजार से हैं। बिलों के दलाल और स्टॉक बाजार के व्यापारी अपने ग्राहकों के व्यापार सीमान्तों व अपने प्रतिभूति के स्टॉकों के लिए वित्तीय सहायता की आवश्यकता अनुभव करते हैं और यह वित्तीय सहायता बैंकों द्वारा प्रदान की जाती है। बैंक द्वारा बिल दलालों को और स्टॉक बाजार के व्यापारियों को सात दिन के लिए प्रायः प्रतिदिन या केवल एक रात के लिए ऋण दिए जाते हैं। ये ऋण अल्प सूचना ऋण या अल्प-सूचना राशि कहलाते हैं, क्योंकि बैंक उन्हें अल्पतम सूचना पर वापस माँग सकते हैं। अल्प-सूचना राशि बाजार में व्यापारिक बैंक ऋणदाता होते हैं और स्टॉक बाजार के व्यापारी और दलाल ऋणी होते हैं।

2. **स्वीकृति बाजार (Acceptance Market)—**स्वीकृति बाजार से हमारा आशय बैंकरों की स्वीकृतियों के बाजार से है जो कि घरेलू और विदेशी सौदों के परिणामस्वरूप उत्पन्न होता है। प्रसिद्ध व्यापारिक फर्मों या बैंकों द्वारा स्वीकृत बिल बाजार में सुविधापूर्वक बेचे या बट्टा कराए जा सकते हैं।

3. **बिल बाजार (Bill Market)—**बिल बाजार या हुंडी बाजार से आशय उस बाजार से है जिसमें अल्प-अवधि बिल या व्यापारिक पत्र खरीदे या बेचे जाते हैं। बिल बाजार मुद्रा बाजार का एक महत्वपूर्ण तत्व है। सामान्यतः बिल की अवधि तीन महीने (90 दिन) होती है बिल दो तरह के हो सकते हैं।

(a) विनिमय बिल या व्यापारिक बिल।

(b) वित्त बिल या ट्रेजरी बिल।

व्यापारिक बिल या विनिमय बिल में फर्म या सरकार द्वारा निश्चित धन भुगतान करने का वादा किया जाता है। इन्हें बिल बाजार में क्रय व विक्रय किया जा सकता है।

बिल बाजार का गठन तथा महत्व

बिल बाजार में व्यापारिक बैंकों, डिस्काऊंट गृह, स्वीकृति गृह, बिल दलाल आदि को शामिल करते हैं। बिल बाजार के दो भाग हैं। (a) व्यापारिक बिल बाजार, (b) ट्रेजरी बिल बाजार।

बिल बाजार निम्नलिखित कारणों से मुद्रा बाजार में विशेष स्थान रखता है—

1. व्यापारिक बिल, फर्म को वित्त उपलब्ध कराने का महत्वपूर्ण साधन है। यह सामान खरीदने व बेचने के लिए प्रयोग किया जाता है।

2. व्यापारिक बैंक जिनके पास आधिक्य तरलता है वह अल्पअवधि बिल द्वारा ब्याज आय को आकर्षित कर सकते हैं। तरलता की आवश्यकता पड़ने पर वे बिलों को रिजर्व बैंक ऑफ इण्डिया (RBI) को हस्तांतरण कर सकते हैं।

3. रिजर्व बैंक की मौद्रिक नीति के लिए बिल बाजार का अधिक महत्व है क्योंकि बिल बाजार के द्वारा साख की मात्रा को नियंत्रित किया जा सकता है।

3.1.3 विकसित मुद्रा बाजार का महत्व (Importance of Developed Money Market)

आधुनिक अर्थव्यवस्था में मुद्रा बाजार एक महत्वपूर्ण संस्था है। यद्यपि यह संस्था औद्योगिक तथा वाणिज्यिक प्रगति के साथ-साथ विकसित हुई है और इनकी प्रगति का परिणाम भी है, फिर भी इसने उद्योग और वाणिज्य के विकास को अधिक प्रभावित किया है।

1. **उद्योग व वाणिज्य को वित्त प्रदान करना**—मुद्रा बाजार उद्योग व वाणिज्य की काफी सहायता करता है। इसके द्वारा उद्योगों को वित्तीय बिलों, व्यापारिक विपत्रों आदि के द्वारा उनकी चालू पूंजी की आवश्यकताओं में भारी सहायता प्रदान की जाती है। मुद्रा बाजार की परिस्थितियाँ और उनमें चालू अल्पकालीन ब्याज की दरें दीर्घकालीन पूंजी बाजार और दीर्घकालीन ब्याज की दरों को भी प्रभावित करती हैं। इसलिए पूंजी बाजार की स्थिति मुद्रा बाजार की स्थिति पर निर्भर होती है और दोनों बाजार मिलकर देश के आर्थिक विकास में महत्वपूर्ण योगदान देते हैं। मुद्रा बाजारों ने व्यापार और वाणिज्य को वित्त प्रदान करने में अधिक महत्वपूर्ण योगदान दिया है।

2. **अल्पकालीन निधियों का निवेश**—मुद्रा बाजार व्यापारिक बैंकों की अल्पकालीन निधियों के निवेश के लिए आवश्यक आस्ति प्रदान करता है। व्यापारिक बैंक मुख्यता अपने जमाकर्त्ताओं के धन से काम करते हैं। इसलिए वे अधिकतम तरलता की दृष्टि से अल्पकालीन व सुरक्षित सम्पत्तियों की आवश्यकता अनुभव करते हैं। ऐसी सम्पत्तियाँ उनको अविलम्ब मुद्रा बाजार व बिल बाजार में प्राप्त हो जाती है। इस प्रकार मुद्रा बाजार व्यापारिक बैंक को अस्थायी रूप से अपनी निधियों को तरल या मुद्रावतों में लगने का अवसर देता है।

3. **केन्द्रीय बैंकों को सहायता**—विकसित मुद्रा बाजार के विभिन्न उप-बाजार केन्द्रीय बैंक के सफल कार्य संचालन में सहायता करते हैं। एक ओर, मुद्रा बाजार और ब्याज की अल्पकालीन दरें देश

में चल रही मौद्रिक व बैंकिंग परिस्थितियों के ताप-मापक का कार्य करती हैं और केन्द्रीय बैंक के नीति निर्धारण में पथ-प्रदर्शक का कार्य करती है।

प्रो. सेन के शब्दों में, ''जितना अधिक सुसंगठित मुद्रा बाजार होता है उतनी ही सरलता से केन्द्रीय बैंक देश की बैंकिंग व्यवस्था पर नियन्त्रण कर सकता है।''

4. **सरकार को सहायता**—मुद्रा बाजार सरकार की दो तरह की सहायता करता है प्रथम, मुद्रा बाजार सरकार को आवश्यक अल्पकालीन निधियाँ प्रदान करता है। लगभग सभी सरकारें कोषागार बिलों के जरिये इस सुविधा का लाभ उठाती है। दूसरे, मुद्रा बाजार के अभाव में अल्पकालीन निधियों की आवश्यकता होने पर सरकार को या तो आदेश मुद्रा जारी करनी पड़ेगी या केन्द्रीय बैंक से उधार लेना पड़ेगा और ये दोनों ही तरीके स्पष्टत: स्फीतिक है।

3.1.4 मुद्रा बाजार की विशेषतायें (Features of Money Market)

I. **गठन (Structure)**—भारतीय मुद्रा बाजार को दो क्षेत्रों में, संगठित क्षेत्र तथा असंगठित क्षेत्र में बाँटा जा सकता है। इनमें बहुत कम सहयोग तथा मेल होता है जिसके कारण दोनों (संगठित क्षेत्र एवं असंगठित क्षेत्र) बाजारों की ब्याज दरों में बहुत अधिक परिवर्तन या अन्तर होता है।

II. **मौसमी अन्तर (Seasonal Variation)**—कोषों की मांग के लिए दो मौसम होंगे, व्यस्त मौसम तथा ढीला सीजन। व्यस्त मौसम में नवम्बर से अप्रैल तक की अवधि होगी, जिसमें कृषि पदार्थ बाजार में आते हैं। इस अवधि में कोषों की अधिक माँग होगी। ढीली अवधि में मई से अक्टूबर तक की अवधि शामिल होगी। इस अवधि में कोष भुगतान होंगे तथा उनकी माँग में गिरावट आनी शुरू हो जाएगी।

III. **आन्तरिक अल्प सूचना मुद्रा बाजार (Inter Call Money Market)**—भारतीय मुद्रा बाजार का कोर आन्तरिक बैंक अल्प सूचना बाजार है। यह क्षेत्र मुद्रा बाजार का सबसे अधिक संवेदनशील है।

IV. **सरकारी प्रतिभूतियों का मुख्य स्थान (Prodominant Place of Government Securities)**— भारतीय मुद्रा बाजार में मुख्य स्थान सरकारी और अर्धसरकारी प्रतिभूतियों द्वारा बाँटा जाता है।

V. **स्वीकृति तथा डिस्काउंट गृह की अनुपस्थिति (Absence of Acceptance and Discount Houses)**—भारतीय मुद्रा बाजार में स्वीकृति तथा छूट गृह की पूर्णतया: अनुपस्थिति पाई जाती है। यह अल्पविकसित बिल बाजार के कारण है।

VI. **विदेशी मुद्रा बाजार से अलगाव (Isolation from Foreign Market)**—भारतीय मुद्रा बाजार विदेशी मुद्रा बाजार से अलग है।

VII. **विभिन्न वित्तीय संस्थान (Variety of Financial Instituions)**—भारतीय मुद्रा बाजार की विशेषता एक बड़ी मात्रा में वित्तीय संस्थान की उपलब्धता है, जैसे—सहकारिता बैंक तथा आयात-निर्यात बैंक।

3.1.5 भारतीय मुद्रा बाजार के दोष (Weakness of Indian Money Market)

भारतीय मुद्रा बाजार के विकसित देशों की मुद्रा बाजार जैसे—लन्दन मुद्रा बाजार या न्यूयार्क मुद्रा बाजार से तुलना नहीं की जा सकती। यह एक अल्पविकसित मुद्रा बाजार की स्थिति में है। भारतीय मुद्रा बाजार की प्रमुख कमियाँ निम्नलिखित हैं—

1. **समन्वय की अनुपस्थिति (Absence of Coordination)**—मुद्रा बाजार के संगठित तथा असंगठित क्षेत्रों में समन्वय नहीं है जिसके कारण दोनों संगठनों में व्यर्थपूर्ण प्रतियोगिता होती है। इस प्रकार की स्थिति देश की आर्थिक प्रगति में सबसे बड़ी बाधा है।

2. **विकसित बिल बाजार का अभाव (Absence of Developed Bill Market)**—भारतीय मुद्रा बाजार की सबसे प्रमुख कमी विकसित बिल बाजार का अभाव है। भारतीय मुद्रा बाजार में व्यापार होने वाले देशीय व विदेशी बिलों का व्यवहार होता है फिर भी इसका क्षेत्र सीमित है। इसलिए संगठित बिल बाजार अभी भी वास्तविक रूप से विकसित नहीं है। विकसित मुद्रा बाजार में प्रमुख रुकावटें निम्न है।

   I. देश के विभिन्न क्षेत्रों में बिलों को लिखने में एकरूपता नहीं पाई जाती है।

   II. नकद साख का मुख्य प्रयोग व्यापारिक बैंकों से उधार लेने के रूप में किया जाता है।

   III. नकद व्यवहार का दबाव।

   उपरोक्त कारणों के कारण बिल बाजार अल्पविकसित है।

3. **मुद्रा बाजार में कोषों में कमी (Shortage of Funds in Money Market)**—भारतीय मुद्रा बाजार की विशेषता कोषों में कमी का होना है बाजार में उपलब्ध कोष व्यापार तथा उद्योगों की आवश्यकताओं को पूरा करने के लिए अपर्याप्त है कोषों की कमी के लिए मुख्य रूप से गरीबी, आय का निम्न स्तर और कम बचत उत्तरदायी है। अपर्याप्त बैंकिंग सुविधायें भी कोषों की कमियों के लिए उत्तरदायी है।

4. **कोषों में मौसमी दृढ़ता (Seasonal Stringency of Funds)**—भारतीय मुद्रा बाजार की अन्य कमी वर्ष में विशेष मौसम में साख की दृढ़ता है। फसल अवधि (अप्रैल से नवम्बर) तक साख की माँग में अत्यधिक तेजी आती है। इस अवधि में पूर्ति को माँग के अनुपात में नहीं बढ़ाया जा सकता जिसके परिणामस्वरूप व्यस्त मौसम में ब्याज की दर अत्यधिक बढ़ जाती है जबकि ढीली अवधि में माँग में कमी के कारण ब्याज दर भी काम में आती है।

5. **ब्याज दर में एकरूपता की कमी (Lack of Uniformity in Interest-Rates)**—भारतीय मुद्रा बाजार में ब्याज दर में एकरूपता नहीं है। ग्रामीण क्षेत्रीय बैंक तथा सहकारी बैंक की ब्याज दर व्यापारिक बैंकों की ब्याज दर से कम होती है। इसी प्रकार बिल दर तथा हुण्डी दर भी अलग-अलग होती है।

6. **देशी बैंकों की प्रबलता (Dominance of Indigenous Banks)**—भारतीय बैंकिंग क्षेत्र में देशी बैंकर अभी भी हावी है। खासकर ग्रामीण क्षेत्रों में, व्यापारिक बैंकों के फैलाव के बावजूद, किसानों

एवं मजदूरों के लिए साहूकार ही उधार देने का एकमात्र स्रोत बना हुआ है। ये साहूकार ऊँची ब्याज दर के साथ-साथ अन्य अनाचार (Malpractices) अपनाकर ग्राहकों का शोषण करते हैं, ''रिजर्व बैंक का इन पर कोई नियन्त्रण नहीं है।''

7. **अल्पविकसित बैंकिंग आदतें (Undeveloped Banking Habbits)**—भारत में अभी भी अल्पविकसित बैंकिंग आदतें हैं इसके कारण कई हैं—

   1. U.S.A. में प्रत्येक 14 व्यक्तियों के लिए एक व्यापारिक बैंक की शाखा है जबकि भारत में 13000 व्यक्तियों के लिए व्यापारिक बैंक की शाखा है।

   2. अधिकतम व्यवहार नकद दिये जाते हैं।

   3. चैक का प्रयोग प्रतिबन्धित है।

3.1.6 मुद्रा बाजार सुधार के सुझाव (Suggestions for Money Market Improvement)

1. **बिल बाजार का विकास (Development of Bill Market)**—बिल बाजार को विकसित करना चाहिए। भारत में बिल बाजार को प्रोत्साहन देने के लिए पुनः डिस्काउंट सुविधा को बढ़ाना चाहिए। रिजर्व बैंक को शक्तिशाली व सुदृढ़ कार्य करके बिल बाजार को विकसित करना चाहिए।

2. **हुण्डियों का प्रमापीकरण (Standardisation of Hundies)**—बिल बाजार को विकसित करने के लिए आवश्यक है कि हुण्डियों का प्रमापीकरण किया जाये। हुण्डी से सम्बंधित नियम, भाषा तथा सामान में एकरूपता होनी चाहिए।

3. **वेअरहाउसिंग सुविधा (Warehousing Facilities)**—वर्तमान वेअरहाउसिंग सुविधा को बढ़ाना चाहिए ताकि अधिक लोग ऋण ले सकें।

4. **रुपया भेजने की सुविधा को बढ़ावा (Expansion of Remittance Facilities)**—रुपया भेजने की सुविधा का अर्थ कोषों को सस्ता तथा शीघ्र हस्तांतरण करने से है। रिजर्व बैंक द्वारा इस सुविधा को बढ़ा दिया जाना चाहिए।

5. **ब्याज दरों के अन्तरों को दूर करना (Elimination of difference in Interest-Rates)**—रिजर्व बैंक को संगठित तथा असंगठित क्षेत्रों की ब्याज दर के अन्तर को दूर करने के लिए आवश्यक कदम उठाने चाहिए।

6. **स्टेम्प ड्यूटी कम करना (To Reduce Stamp Duty)**—बिल की स्टेम्प ड्यूटी कम करनी चाहिए। जिससे बिल अधिक प्रसिद्ध होंगे।

7. **स्वीकृति एवं डिस्काउंट गृह की स्थापना (Establishment of Acceptance and Discount Houses)**—अधिक स्वीकृति एवं डिस्काउंट गृहों की स्थापना से अधिक बिल स्वीकृति तथा डिस्काउंट होंगे।

8. **छूट दर में कमी (Lowering of Discount Rates)**—छूट दर को कम करना चाहिए। इससे बिलों के प्रयोग को प्रोत्साहन मिलेगा।

9. **देशी बैंकों का नियमन (Regulation of Indigenous Banks)**—यदि रिजर्व बैंकों, देशी बैंकों का नियमन सुनिश्चित कर दे तो इससे भारतीय मुद्रा बाजार की कार्यप्रणाली में अवश्य सुधार आएगा। अत: रिजर्व बैंकों को इन बैंकों का नियमन करके इन्हें पुन: कटौती एवं ऋण सुविधाएँ भी प्रदान करनी चाहिए।

10. **समाशोधन गृहों की संख्या का पुनर्गठन एवं वृद्धि (Reorgnization and increase in the Number of Clearing Houses)**—भारतीय मुद्रा के समुचित विकास हेतु समाशोधन गृहों की संख्या में उचित बढ़ोतरी की जानी चाहिए तथा इसके साथ-साथ इन गृहों को और अधिक कार्यकुशल एवं प्रभावी बनाने के लिए पुनर्गठन किया जाना चाहिए।

3.2 पत्र मुद्रा निर्गमन की रीतियाँ (Methods of Note Issue)

I. **निश्चित विश्वासाश्रित प्रणाली (Fixed Fiduciary System)**—यह प्रणाली चलन सिद्धान्त पर आधारित है। इसके अन्तर्गत देश की सरकार एक निश्चित सीमा निर्धारित कर देती है। जहां तक कागज के नोट बिना कोई कोष रखे निकाले जा सकते हैं। यदि इस सीमा से अधिक नोट निकालने की आवश्यकता पड़े तो अतिरिक्त राशि पर, शत-प्रतिशत स्वर्ण-कोष रखना पड़ता है।

उदाहरणस्वरूप यदि किसी देश में विश्वासाश्रित सीमा 500 करोड़ निर्धारित कर दी जाये और वह देश में 600 करोड़ इकाई मुद्रा निर्गमित कर दे तो 500 करोड़ तक तो उसे कोई कोष रखने की जरूरत नहीं परन्तु शेष (600-500) सौ करोड़ के लिए उसे शत-प्रतिशत स्वर्ण कोष में रखना होगा।

इस प्रणाली को बैंक चार्टर विधान 1844 के अनुसार इंग्लैण्ड में अपनाया गया था। इसके अपनाने का मुख्य कारण मुद्रा-स्फीति से बचाव करना था। विधान के अनुसार विश्वासाश्रित सीमा 1.4 करोड़ पौण्ड निर्धारित की गई थी। नोटों की इस राशि के पीछे केवल सरकारी प्रतिभूतियां कोष में रखी जाती थी।

निश्चित विश्वासाश्रित प्रणाली के गुण (Merits of fixed Fiduciary System)

1. **मुद्रा स्फीति नहीं**—इस प्रणाली में विश्वासाश्रित सीमा से अधिक जितने नोट निकाले जाते हैं उन पर शत-प्रतिशत स्वर्ण कोष रखना पड़ता है। अत: इस प्रणाली के अन्तर्गत कागजी मुद्रा प्राय: आवश्यकता से अधिक नहीं होने पाती। इससे मुद्रा की विनिमय दर में स्थायित्व बना रहता है और वस्तुओं के मूल्य भी नहीं बढ़ने पाते।

2. **परिवर्तनशीलता**—इस प्रणाली में नोटों की स्वर्ण में परिवर्तनशीलता का वचन दिया जाता है जिससे सैद्धान्तिक रूप से इस व्यवस्था का गुण कहा जा सकता है।

3. **जनता का विश्वास**—स्फीति का भय न रहने तथा परिवर्तनशीलता की घोषणा के कारण इस प्रणाली में जनता का सामान्य विश्वास बना रहता है।

निश्चित विश्वासाश्रित प्रणाली के दोष (Demerits of Fixed Fiduciary System)

1. **मुद्रा कम करने में कठिनाई**—इस प्रणाली का मुख्य दोष यह है कि स्वर्ण कोष बढ़ने पर मुद्रा की मात्रा में वृद्धि की जा सकती है किन्तु स्वर्ण कोष की मात्रा कम हो जाए तो मुद्रा की मात्रा को कम करना कठिन होता है।

2. **बेलोचदार**—विश्वासाश्रित सीमा के ऊपर नोट निकालने पर शत–प्रतिशत मूल्य का स्वर्ण रखना पड़ता है, यही इस प्रणाली का सबसे बड़ा दोष है। कुछ व्यक्ति इसे गुण की संज्ञा देते हैं, क्योंकि आधुनिक युग में यह व्यवस्था मुद्रा स्फीति के विरुद्ध रोक है।

उपर्युक्त कठिनाईयों के होते हुए भी ब्रिटेन इस प्रणाली को सफलतापूर्वक अपनाए हुए है क्योंकि यह कठिनाईयाँ व्यवहार में उतनी गंभीर नहीं है जितनी सिद्धांत में दिखायी पड़ती है।

II. अधिकतम विश्वासाश्रित प्रणाली (Maximum Fiduciary System)—इस प्रणाली के अन्तर्गत यह निश्चित कर दिया जाता है कि इस देश की केन्द्रीय बैंक अधिक से अधिक कितनी राशि में पत्र मुद्रा निर्गमित कर सकता है। उस सीमा से अधिक पत्र मुद्रा किसी भी हालत में निर्गमित नहीं की जा सकती।

उदाहरणत : यदि अधिकतम विश्वासाश्रित सीमा 500 करोड़ तय की गयी तो वह देश किसी भी हालत में 500 करोड़ इकाइयों से अधिक मुद्रा नहीं निकाल सकता। 1928 से पूर्व फ्रांस में अधिकतम सीमा प्रणाली प्रचलित थी परन्तु 1928 में उसने इसका त्याग कर दिया।

उपर्युक्त अवस्था में मुद्रा की कमी तो प्रतीत नहीं होगी परन्तु यदि सीमा बहुत ऊँची निर्धारित कर दी जाय तो मुद्रा–स्फीति की स्थिति उत्पन्न हो सकती है। इस भय को दूर करने के लिए विश्वासाश्रित अधिकतम सीमा कुछ कम निश्चित करनी चाहिए और कोषाध्यक्ष अथवा वित्तमन्त्री की अनुमति से इसमें निरन्तर वृद्धि करने की व्यवस्था होनी चाहिए। इससे इस अवस्था में अत्यधिक सीमा आ जायेगी और प्रत्येक वृद्धि के लिए अनुमति की जरूरत होने के कारण मुद्रा प्रसार पर भी कुछ रोक रहेगी।

विकासशील देशों के लिए यह व्यवस्था सामान्यत: उपर्युक्त कही जा सकती है।

III. आनुपातिक कोष पद्धति (Proportional Reserve System)—यह पद्धति बैंकिंग सिद्धान्त पर आधारित है। इस रीति के अन्तर्गत देश में जितनी पत्र मुद्रा निकाली जाती है उसका एक निश्चित प्रतिशत स्वर्ण के रूप में कोष में रखा जाता है शेष भाग के पीछे सरकारी प्रतिभूतियाँ अथवा प्रथम श्रेणी के व्यापारिक प्रपत्र कोष में रखे जाते हैं। उदाहरणस्वरूप, यदि किसी देश में 25 प्रतिशत कोष रखने का नियम हो तो 100 मुद्रा इकाइयाँ निबटाने पर 25 के मूल्य का स्वर्ण तथा शेष 75 के मूल्य की सरकारी प्रतिभूतियाँ अथवा बिल आदि कोष में रखे जायेंगे।

यह पद्धति सबसे पहले 1875 में जर्मनी द्वारा अपनायी गई थी। इसके बाद संयुक्त राज्य अमरीका ने इसे अपनाया। जनवरी 1968 से यह व्यवस्था अमरीका में भी समाप्त कर दी गयी।

आनुपातिक कोष प्रणाली के गुण (Merits of Proportional Reserve System)

1. **लोचदार**—इस प्रणाली के अन्तर्गत कुछ प्रतिशत मात्रा में स्वर्ण रखकर मुद्रा निर्गमित की जाती है। इस प्रकार स्वर्ण की मात्रा एक ओर तो मुद्रा–स्फीति के विरुद्ध रोक होती है। दूसरी ओर स्वर्ण की मात्रा कम ही निश्चित की जाती है अत: मुद्रा की मात्रा में आवश्यक वृद्धि करना कठिन नहीं है।

2. **मुद्रा स्फीति पर सामान्य रोक**—इस प्रणाली में पर्याप्त लोच होने के साथ कुछ न कुछ स्वर्ण कोष में रखना इस बात का प्रतीक है कि देश में मुद्रा की मात्रा में वृद्धि पर सामान्य अंकुश रहता है। प्रजातन्त्रवादी सरकारों के लिए यह अंकुश ही पर्याप्त माना जाना चाहिए।

आनुपातिक कोष प्रणाली के दोष (Demerits of Proportional Reserve System)

1. **कोष की व्यवस्था**—इसमें मुद्रा के पीछे वो कोष रखे जाते हैं, वह परिवर्तनशीलता के लिए पर्याप्त होते नहीं, अत: संकटकाल में उनका विशेष उपयोग सम्भव नहीं है। सामान्यकाल में यह कोष बिल्कुल व्यर्थ पड़े रहते हैं। अत: विकासशील देशों के लिए यह प्रणाली बहुत उपयुक्त प्रतीत नहीं होती।

2. **मुद्रा कम करना कठिन**—इस प्रणाली के अन्तर्गत 25-30 प्रतिशत स्वर्ण कोष में रखे जाते हैं, अत: मुद्रा की मात्रा में वृद्धि करना तो सरल है किन्तु जब 25 रुपये के तुल्य सोना कम हो जाए तब 800 रुपये के समान मुद्रा कैसे कम की जायेगी, यह एक जटिल समस्या है। यदि निर्यात होने से स्वर्ण-कोष में बहुत ही कमी आ जाए तो स्वभाविक रूप में मुद्रा की मात्रा बहुत कम कर देनी पड़ेगी किन्तु समस्या यह है कि ऐसा किस प्रकार किया जाएगा।

भारत में आनुपातिक कोष पद्धति (Proportional Reserve System in India)

आनुपातिक कोष पद्धति का एक सुधरा हुआ रूप भारत में अपनाया गया था। इसके अनुसार समस्त मुद्रा निर्गमन के पीछे 40 प्रतिशत स्वर्ण अथवा विदेशी विनिमय कोष रखना आवश्यक था। इसमें यह भय था कि कोष में स्वर्ण बिल्कुल न रखकर केवल विदेशी मुद्रा ही रखी जाती थी। अत: यह व्यवस्था की गई थी कि कुल कोष (स्वर्ण + विदेशी विनिमय) में से कम से कम 40 करोड़ रुपये के मूल्य का स्वर्ण होना आवश्यक था।

इस पद्धति का गुण यह था कि इसमें स्वर्णकोष की अधिक आवश्यकता नहीं थी। 40 करोड़ रुपये के मूल्य का स्वर्ण रखकर शेषकर (40 प्रतिशत तक) विदेशी प्रतिभूतियाँ रखी जा सकती थीं। इस दृष्टिकोण से यह पद्धति अधिक लोचदार और अधिक मितव्ययतापूर्ण थी। परन्तु विकासशील देशों में विदेशी विनिमय भी कोष रखना कठिन हो जाता है।

आनुपातिक कोष प्रणाली को प्रतिशत प्रणाली भी कहते हैं।

आनुपातिक कोष प्रणाली एवं निश्चित विश्वासाश्रित प्रणाली में तुलना—

आनुपातिक कोष प्रणाली	निश्चित विश्वासाश्रित प्रणाली
1. इस प्रणाली में कुल निर्गमित पत्र मुद्रा का एक निश्चित प्रतिशत भाग स्वर्ण कोष में रखना पड़ता है।	इस व्यवस्था में पत्र मुद्रा की तरफ निश्चित सीमा से अधिक मुद्रा के पीछे शत-प्रतिशत भाग स्वर्ण कोष में रखना पड़ता है।
2. यह व्यवस्था अधिक लोचदार है।	यह व्यवस्था कम लोचदार है।
3. इस व्यवस्था में मुद्रा-स्फीति का विश्वासाश्रित भय अधिक रहता है। कर दी जाय तो स्फीति का भय रहता है।	इस व्यवस्था में यदि रहता है। विश्वासाश्रित सीमा बहुत ऊँची निर्धारित सामान्यत: यह सीमा नीची ही रखी जाती है।

उपर्युक्त दोनों ही प्रणालियों में स्वर्ण-कोषों की मात्रा कुल निर्गमित मुद्रा की मात्रा से बहुत कम होती है और स्वर्णकोष बेकार पड़े रहते हैं। यदि व्यावहारिक दृष्टि में देखा जाय तो आधुनिक विकासवादी युग में दोनों ही प्रणाली समय एवं परिस्थिति के अनुकूल नहीं है। तभी तो हम देखते हैं। कि ब्रिटेन अपनी मुद्रा-व्यवस्था को लोचदार बनाने के लिए विश्वासाश्रित सीमा को समय-समय पर परिवर्तित करता रहता है।

IV. न्यूनतम कोष प्रणाली (Minimum)

इस पद्धति के अन्तर्गत मुद्रा निर्गमन अधिकारी को यह आदेश होता है कि वह एक निश्चित मात्रा में स्वर्ण अथवा विदेशी विनिमय कोष में रखकर फिर चाहे जितनी मात्रा में मुद्रा निकाल सकता है। इस पद्धति का प्रयोग 1957 में भारत में किया गया। इसके अनुसार यह निश्चित किया गया था कि देश में स्वर्ण और विदेशी विनिमय कुल मिलाकर कम से कम 200 करोड़ रुपये के मूल्य का कोष रखना अनिवार्य है। इसमें से भी 115 करोड़ रुपय के मूल्य का स्वर्ण होना चाहिए। इतना कोष रखकर फिर चाहे, जितनी मात्रा में मुद्रा निर्गमित की जा सकती है।

न्यूनतम कोष प्रणाली के गुण (Merits of Minimum Reserve System)

1. **लोचदार**—यह पद्धति अधिक लोचदार है क्योंकि इसमें एक निश्चित मात्रा में कोष रखने के पश्चात् आवश्यक मात्रा में मुद्रा निकाली जा सकती है। इस दृष्टि से यह पद्धति विकासशील देशों के लिए बहुत अनुकूल है।

2. **कम खर्चीली**—इस प्रणाली का एक महत्वपूर्ण गुण यह है कि इसमें बहुत कम मात्रा में स्वर्ण कोष रखने पड़ते हैं। उदाहरणतः भारत में 115 करोड़ रुपये के स्वर्ण-कोष ही रखने अनिवार्य है। कुल कोषों की राशि जिसमें स्वर्ण तथा विदेशी प्रतिभूतियाँ सम्मिलित हैं, 200 करोड़ रुपये के बराबर होनी चाहिए। इन कोषों के आधार पर जितनी जरूरत हो उतनी मुद्रा निकाली जा सकती है।

दोष

इस प्रणाली का मुख्य दोष यह है कि इसमें मुद्रा-स्फीति का भय बना रहता है क्योंकि मुद्रा की मात्रा पर कोई महत्वपूर्ण नियन्त्रण नहीं रहता। किन्तु यह दोष इस पद्धति का नहीं सरकारी नीति का है जो मुद्रा व्यवस्था पर यथोचित नियंत्रण नहीं रखती। अतः व्यावहारिक दृष्टि से न्यूनतम कोष प्रणाली एक लोचदार, कम खर्चीली और प्रगतिशील मुद्रा पद्धति है जो विकासशील देशों के लिए बहुत उपयुक्त है।

V. साधरण विधि प्रणाली (Simple Reserve System)

यह पद्धति चलन प्रणाली पर आधारित है और इसमें मुद्रा की प्रत्येक इकाई के पीछे शत-प्रतिशत कोष रखा जाता है और कागजी मुद्रा स्वर्ण या चाँदी में परिवर्तनशील होती है। साधारण निधि प्रणाली बहुत खर्चीली और लोचहीन है परन्तु इसमें मुद्रा स्फीति का भय नहीं रहता। वास्तव में यह प्रणाली वर्तमान युग के अनुकूल नहीं है।

VI. कोषगार विपत्र प्रणाली (Bond Deposit System)

इस प्रणाली के अन्तर्गत सरकार कोषागार विपत्रों के आधार पर ही नोट निकाल देती है। उनके पीछे

स्वर्ण या अन्य मूल्यवान धातु कोष में रखने की परम्परा नहीं है। द्वितीय युद्धकाल में भारतीय रिजर्व बैंक ने कुछ समय तक कोषागार विपत्रों की आड़ पर ही नोट निर्गमित किये थे।

इस प्रणाली में मुद्रा-स्फीति का भय रहता है क्योंकि सरकार को जब भी मुद्रा की आवश्यकता होती है वह केन्द्रीय बैंक को कोषागार विपत्र बेच देती है और केन्द्रीय बैंक उतनी ही मात्रा के नोट निकाल देता है। इसमें तथ्य ध्यान देने योग्य है कि केन्द्रीय बैंक स्वेच्छा से नोटों की मात्रा में वृद्धि नहीं कर सकता। अत: यदि सरकार नोटों की मात्रा में वृद्धि न चाहे तो यह प्रणाली कम लोचदार होगी।

संक्षेप में पत्र मुद्रा निर्गमन की उपरोक्त अनेक पद्धतियों का अध्ययन करने के बाद इस पूर्ण विश्वास से नहीं कह सकते कि अमुक पद्धति सर्वश्रेष्ठ है एक अच्छी पद्धति में लोच, मितव्ययता, परिवर्तनशीलता, सरलता, अनावश्यक प्रसार के प्रति सुरक्षा, वन विश्वास आदि गुण होने चाहिए। हालांकि जनता का विश्वास सरकार और रिजर्व बैंक की स्वस्थ और कुशल नीतियों के कारण होता है न कि मुद्रा की परिवर्तनशीलता के कारण होता है। वास्तव में मुद्रा निर्गमन की श्रेष्ठ पद्धति वह है जो देश की आर्थिक प्रगति तथा कीमत सन्तुलन में सहायक होती है।

4. सारांश (Summary)

इस पाठ का अधययन करने के पश्चात् यह निष्कर्ष निकाला जा सकता है कि भारतीय मुद्रा का संचालन केन्द्रिय बैंक अर्थात् भारतीय रिजर्व बैंक द्वारा किया जाता है। हालांकि भारतीय मुद्रा बाजार अभी पूर्णतया विकसित नहीं है जिसका मुख्य कारण बिल बाजार का पूर्ण विकसित न होना, लोगों में बैंकिंग आदतों का अभाव, ब्याज दरों में विभिन्नता, देशी बैंकों की प्रबलता आदि है। मुद्रा बाजार के इन दोषों को दूर करने हेतु कुछ सुझाव भी दिए गए हैं। जिनको अपनाकर भारतीय मुद्रा बाजार के दोषों को दूर करने में मदद मिलेगी और वह बाजार विकसित हो सकेगा।

इस पाठ के दूसरे भाग में पत्र मुद्रा निर्गमन के विभिन्न पद्धतियों (तरीकों) का अध्ययन किया गया है। पूर्ण विश्वास से नहीं कह सकते कि कौन-सी पद्धति सर्वश्रेष्ठ है अर्थात् एक ऐसी पद्धति जिसमें लोच, मितव्ययता, परिवर्तनशीलता, सरलता, अनावश्यक प्रकार के प्रति सुरक्षा पाई जाती है और देश की आर्थिक प्रगति और कीमत सन्तुलन में सहायक है।

5. प्रस्तावित पुस्तकें (Suggested Reading)

I. भारतीय वित्तीय प्रणाली—टी. आर. जैन एवं ओ. पी. खन्ना।

II. भारतीय वित्तीय प्रणाली—कुलदीप गुप्ता एवं डॉ. राजकुमार।

6. नमूने के प्रश्न (Self Assessment Questions)

1. भारतीय मुद्रा बाजार से क्या अभिप्राय है ? इसके ढांचे की व्याख्या करें।

   What is meant by Indian Money Market ? Describe its structure.

2. भारतीय मुद्रा बाजार की मुख्य विशेषताओं का वर्णन करें।

   (Mention the main characteristics of Indian Money Market)

3. भारतीय मुद्रा बाजार को अल्पविकसित क्यों कहा जाता है ? इसके विकास के लिए सुझाव दीजिए।

(Why is Indian Money Market characterised as under developed ? Give suggestions for its development).

4. पत्र मुद्रा निर्गमन की विभिन्न पद्धतियों की व्याख्या कीजिए। इनमें से आप किसे सर्वश्रेष्ठ समझते हैं ?

(Explain the various methods of note issue. Which of them is best in your opinion).

B.Com. Part-II

Paper : BC-206 (i) Indian Financial System **Revised by : M.L. Singla**

Lesson No. : 5

Indian Financial System

विषय-सामग्री (Contents)

1. परिचय (Introduction)
2. उद्देश्य (Objective)
3. प्रस्तुतिकरण (Presentation)
   3.1 बैंक का अर्थ एवं परिभाषा (Meaning and Definition of Bank)
   3.2. वाणिज्यिक बैंक का महत्त्व (Commercial Banks)
      3.2.1. व्यापारिक बैंकों के कार्य (Functions of Commercial Banks)
      3.2.2. वाणिज्यिक बैंकों का महत्त्व (Importance of Commercial Banks)
   3.3. भारत में व्यापारिक बैंकिंग का ढांचा (Structure of Commercial Banking System in India)
      3.3.1. सार्वजनिक क्षेत्र के बैंक (Public Sector Banks)
      3.3.2. निजी क्षेत्र के बैंक (Private Sector Banks)
      3.3.3. विदेशी बैंक (Foreign Banks)
   3.4. परिसम्पत्ति वर्गीकरण (Assets of Classification)
   3.5. गैर-निष्पादक परिसम्पत्तियाँ (Non-Performing Assets)
      3.5.1. गैर-निष्पादक परिसम्पत्तियाँ के उदय के कारण (Causes of emergence of Non-Performing Assets)
      3.5.2. समस्या के समाधान के लिए उपाय (Measures for the solution of the problem)
4. सारांश (Summary)
5. प्रस्तावित पुस्तकें (Suggested Readings)
6. नमूने के प्रश्न (Self-assessment Questions)

Commercial Banks : Importance, Functions and Problems of Non-performing assets, Structure of Commercial Banking of India

1. भूमिका (Introduction) :

भारत में बैंकिंग का इतिहास बड़ा पुराना है। कौटिल्य अर्थशास्त्र में बैंकिंग का वर्णन मिलता है। परन्तु उस समय बैंकिंग का कार्य एक विशेष वर्ग द्वारा किया जाता था। उन्हें देशी बैंकर कहा जाता था। भारत में आधुनिक बैंक का जन्म 18वीं शताब्दी में हुआ। जब ईस्ट इण्डिया कम्पनी द्वारा बम्बई तथा कलकत्ता में कुछ एजेन्सी ग्रहों की स्थापना की गई। ये एजेन्सी ग्रह बैंकिंग व्यवसाय के साथ-साथ अन्य व्यवसाय भी करते थे। भारत का सबसे पहला बैंक सन् 1770 में एक एजेन्सी ग्रह ऐलक्जेन्डर एण्ड कम्पनी द्वारा स्थापित किया गया। इसका नाम बैंक ऑफ हिन्दुस्तान (Bank of Hindustan) रखा गया। इस बैंक का नोट प्रकाशन का भी अधिकार था। वह बैंक सन् 1832 में बन्द हो गया। सरकार की सहायता से प्रेसीडेसी ऑफ बंगाल (1880) प्रेसीडेंसी ऑफ बम्बई (1840) तथा प्रेसीडेंसी ऑफ मद्रास (1843) स्थापित किए गए। भारतीयों द्वारा स्थापित पहला सीमित दायित्व वाला बैंक अथवा कमर्शियल बैंक था। इसके पश्चात् 1894 में पंजाब नेशनल बैंक की स्थापना की गई। सन् 1921 में इन तीनों बैंकों को मिलाकर इम्पीरियल बैंक ऑफ इण्डिया की स्थापना की गई। सन् 1955 में इस बैंक का राष्ट्रीयकरण करके स्टेट बैंक ऑफ इण्डिया की स्थापना की गई। सन् 1935 में रिजर्व बैंक स्थापित किया गया। यह भारत का केन्द्रीय बैंक है। सन् 1949 में रिजर्व बैंक का राष्ट्रीयकरण कर दिया गया।

स्वतन्त्रता के पश्चात् भारतीय बैंकिंग व्यवसाय ने काफी प्रगति की है। 1949 में बैंको उचित रूप से विकास करने के लिए भारतीय बैंकिंग (नियमन) अधिनियम 1949 में पास कर दिया गया। इसके द्वारा रिजर्व बैंक को भारत की बैंकिंग प्रणाली को नियन्त्रण करने का अधिकार दे दिया गया। जुलाई 1969 में देश के 14 बड़े बैंकों तथा सन् 1980 में 6 अन्य बैंकों का राष्ट्रीयकरण कर दिया गया। देश में कई विशिष्ट वित्तीय संस्थाओं, जैसे भारत का औद्योगिक विकास बैंक, राष्ट्रीय बैंक कृषि एवं ग्रामीण विकास बैंक, निर्यात-आयात बैंक आदि की स्थापना की गई। भारत की बैंकिंग व्यवस्था काफी विविधतापूर्ण तथा सुदृढ़ हो गई है।

2. उद्देश्य (Objective) :

इस पाठ का उद्देश्य आपको भारत की बैंकिंग व्यवस्था से अवगत करवाना है। इस पाठ का अध्ययन करने के पश्चात् आपको वाणिज्यिक बैंकों के कार्यों, महत्त्व एवं ढ़ाँचे की विस्तृत जानकारी हो सकेगी तथा बैंकों की गैर-निष्पादक सम्पत्तियों (Non-Performing Assets) की समस्या को भी जान सकेंगे।

3. प्रस्तुतिकरण (Presentation) :

इस अध्याय में बैंक के अर्थ के साथ-साथ इनके कार्यों, महत्त्व तथा भारत में व्यापारिक बैंकों के ढ़ाँचे को स्पष्ट किया गया है। इसके साथ-साथ भारत में कार्यरत विभिन्न प्रकार के बैंक जैसे निजी, सार्वजनिक, सहकारी एवं विदेशी बैंकों के कार्यों एवं महत्त्व की व्याख्या की गई है तथा बैंकों की सबसे बड़ी समस्या अर्थात् गैर-निष्पादक परिसम्पत्तियों की समस्या सम्बन्धी जानकारी दी गई है।

3.1. बैंक का अर्थ एवं परिभाषा (Meaning and Definition of Bank) :

बैंक शब्द से अभिप्राय वाणिज्यिक बैंक से है यह जर्मन मूल का शब्द है तथापि कुछ लोग इसका उद्भव फ्रांसीसी शब्द बैंकी (Banqui) और इतालवी शब्द बंका (Banca) से मानते हैं। Chamber

Twentieth Century Dictionary में बैंक की परिभाषा "मुद्रा जारी करने, ऋण प्रदान करने, तथा मुद्रा का लेन-देन करने वाली संस्था दी गई है।" कुछ अन्य विद्वानों ने भी अपने-अपने ढंग से बैंक को परिभाषित किया है।

(1) केन्ट के अनुसार, "बैंक एक संगठन है जिसका मुख्य कार्य जनता के अस्थाई निष्क्रिय रुपये को लोगों को खर्च के लिए उधार देना है"

(2) क्राऊचर के अनुसार, "बैंक अपने एवं अन्य लोगों के ऋण में व्यवसाय करता है।"

(3) हार्ट के अनुसार, "बैंकर उस व्यक्ति को कहते है जो अपने साधारण व्यवसाय के रूप में लोगों का रुपया जमा करता है तथा उस रुपये को वह उन लोगों के चैकों का भुगतान करके चुकता है।"

(4) भारतीय बैंकिंग अधिनियम 1949 के अनुसार, "बैंकिंग से अभिप्राय: ऋण देने अथवा निवेश करने के लिए जनता से उन जमाओं को प्राप्त करना है जिनका भुगतान जमाकत्ताओं की मांग पर चैक, ड्रॉफ्ट या आदेश या अन्य किसी प्रकार से करना है।"

(5) गिलबर्ट के अनुसार, "बैंक 'पूँजी' अथवा सही शब्दों में, 'मुद्रा' का व्यवसाय है। इसका तात्पर्य यह है कि बैंक उधार देने वालों तथा उधार लेने वालों के बीच एक कड़ी है, क्योंकि वह कुछ व्यक्तियों से रकम जमा कर अन्य व्यक्तियों को उधार देता है।"

(6) सेयर्स (Sayers) के अनुसार, "बैंक वह संस्था है जिसके ऋणों को अन्य व्यक्तियों के पारस्परिक ऋणों के भुगतान के लिए विस्तृत रूप से स्वीकार किया जाता है।"

(7) हॉरेस व्हाईट (Horace White) के अनुसार, "बैंक साख का एक निर्माता तथा विनिमय को सुविधाजनक बनाने वाला यन्त्र है।"

उपरोक्त सभी परिभाषाओं पर विचार करने के पश्चात् यह जान पड़ता है कि वेबस्टर के शब्दकोष में दी गई परिभाषा सर्वोत्तम है। Webster's Dictionary के अनुसार, "बैंक वह संस्था है जो द्रव्य में व्यवसाय करती है, एक ऐसा प्रतिष्ठान है जहाँ धन का जमा, संरक्षण या निर्गमन होता है तथा ऋण एवं कटौती की सुविधाएँ प्रदान की जाती हैं तथा एक स्थान से दूसरे स्थान पर रकम भेजने की व्यवसाय की जाती है।

इस परिभाषा का प्रथम भाग 'द्रव्य में व्यवसाय' करना एक विस्तृत अर्थ रखता है, क्योंकि द्रव्य का लेन-देन वास्तव में एक बैंकर की क्रियाओं का ऐसा व्यापक रूप है जिसके अन्तर्गत उसके सब कार्य आ जाते हैं। बैंक की इससे भी सरल एवं संक्षिप्त, किन्तु सर्वोत्तम परिभाषा हो सकता है कि "बैंक एक ऐसी संस्था है जो अपने ग्राहकों के लिए धन सम्बन्धी लेन-देन के सब कार्य करती है।"

3.2 वाणिज्यिक बैंक (Commercial Banks) :

बैंकिंग प्रणाली का सबसे महत्त्वपूर्ण अंग व्यापारिक बैंक है। व्यापारिक बैंक वे बैंक है, जो लाभ कमाने के उद्देश्य से बैंकिंग कार्य करते हैं। गोल्डफीलर तथा मैल्डलेयर के अनुसार, इन बैंकों का व्यापारिक शब्द व्यापारिक ऋण सिद्धान्त से लिया गया है। इस सिद्धान्त के अनुसार, "बैंकों की परिसम्पत्ति में नकदी के अतिरिक्त अल्पकालीन ऋणों को भी शामिल किया जाना चाहिए। इसलिए व्यापारिक बैंक उन बैंकों को कहा जाने लगा जो अल्पकाल के लिए ऋण देते है।"

कलर्वस्टन के अनुसार, "व्यापारिक बैंक व संस्थायें है जो व्यापार को अल्पकाल के लिए ऋण देती हैं तथा इस प्रक्रिया में मुद्रा का निर्माण करती है। इन्हें चैक निवेश बैंक (Cheque Deposit Bank) कहना अधिक उपर्युक्त होगा।

भारत में व्यापारिक बैंक केवल उन्हीं बैंको को कहते हैं जिनकी स्थापना भारतीय कम्पनी कानून 1913 के अन्तर्गत हुई है। इन बैंकों की स्थापना ईस्ट इण्डिया कम्पनी के इस देश में आने के बाद हुई है। भारत का पहला व्यापारिक बैंक Bank of Hindustan था। यह बैंक 1770 में स्थापित किया गया था। भारत के प्रमुख व्यापारिक बैंक पंजाब नेशनल बैंक, बैंक ऑफ बड़ौदा, इण्डियन बैंक, सैन्ट्रल बैंक आदि है।

3.2.1 व्यापारिक बैंकों के कार्य (Functions of Commercial Banks) :

व्यापारिक बैंकों के कार्य को तीन भागों में बाँटा जाता है। (A) प्राथमिक कार्य (Primary Functions), (B) गौण कार्य (Secondary Functions), (C) सामाजिक कार्य (Social Functions).

(A) प्राथमिक कार्य (Primary Functions)

बैंकों के मुख्य कार्य है। जमा स्वीकार करना तथा ऋण देना।

1. **जमाएँ स्वीकार करना** : आधुनिक बैंकों का एक महत्वपूर्ण कार्य रकम जमा करना होता है। बैंक प्राय: सभी वर्गों के लोगों से धन जमा करने में रुचि रखते हैं। अत: यह विभिन्न वर्गों की सुविधा के लिए अन्य योजनाएं बनाते हैं और उन योजनाओं द्वारा विभिन्न वर्गों को बैंकों में धन जमा करने के लिए प्रोत्साहित करते हैं।

(i) चालू खाता (Current Account) : इस खाते की विशेषता यह है कि इसमें किसी भी समय कितनी भी रकम या रकमें जमा कराई जा सकती है और आवश्यकतानुसार कितनी भी बार निकलवाई भी जा सकता है। इस दृष्टि से बड़े-बड़े उद्योगपतियों, व्यापारियों के लिए, जिनके पास प्रतिदिन भुगतान में अनगणित चैक आते हैं, तथा जिन्हें प्रतिदिन भुगतान में कई चैक देने पड़ते हैं। चालू खाता अत्यन्त सुविधाजनक एवं उपयोगी होता है। साधारणतया बैंक इस प्रकार की जमा पर कोई ब्याज नहीं देता। यदि जमा की रकम एक न्यूनतम आवश्यक राशि से कम होती है तो कुछ सेवा व्यय (Service Charges) वसूल करता है। इस खाते से रुपया प्राय: चैक द्वारा निकलवाया जाता है। इस खाते में जमा राशि बैंक की माँग देनदारी (Demand Liability) कहलाती है।

(ii) बचत खाता (Saving Bank Account) : वेतनभागी जनता तथा अन्य सामान्य आय वाले व्यक्तियों के बैंकों द्वारा एक विशेष प्रकार के खाते की व्यवस्था की जाती है जिसे बचत खाता कहते हैं। इस खाते में छोटी रकमें (Small Accounts) भी जना की जा सकती है। इस प्रकार के खातों में रकमें दिन में कितनी ही बार जमा तो करवा सकते हैं, परन्तु निकलवाने की सुविधा सप्ताह में केवल एक या दो बार ही दी जाती हैं।

बचत खाता सामान्य आय वाले मध्यम वर्गीय परिवारों के लिए अत्यन्त उपयोगी है, क्योंकि रकम जमा करने तथा निकालने की सामान्य सुविधाएँ उपलब्ध हैं। इस खाते में जमा राशि पर बैंक द्वारा कुछ ब्याज भी दिया जाता है।

(iii) स्थायी जमा खाता (Fixed Deposit Account) : स्थायी खाते में प्राय: एक निश्चित अवधि (जो 46 दिन से लेकर 3 वर्ष या उससे अधिक भी हो सकती है।) के लिए रकम जमा करवाई

जा सकती है। रकम जमा करते समय एक रसीद मिलती है जिस पर रकम जमा होने की तारीख, रकम निकालवाने की तिथि और ब्याज की दर लिखी जाती है। यह रसीद अपरिवर्तनीय होती है अर्थात् इस पर अर्जित रकम केवल जमा करने वाले व्यक्ति को ही मिलती है, किसी अन्य व्यक्तियों को नहीं। इस खाते में जमा पर बैंक अधिक ब्याज देता है। जमा की अवधि जितनी लम्बी होती हैं ब्याज उतना ही अधिक होता जाता है। इस खाते में जमा राशि को बैंक की काल देनदारी (Time Liability) कहा जाता है।

(iv) **घरेलू बचत खाता (Home-Saving Account) :** कुछ बैंक अपने ग्राहकों को लोहे की एक गुल्लक (Safe) या तिजोरी देते हैं जिसमें ताला लगा दिया जाता है तथा चाबी बैंक द्वारा रख ली जाती है। ग्राहक इस तिजोरी में समय-समय पर मुद्रा या रकम डालता रहता है और कुछ समय पश्चात् इस गुल्लक को बैंक में ले जाकर पुरी रकम निकलवा देता है। बैंक इस रकम को ग्राहक के खाते में जमा कर देता है। इस जमा राशि पर बचत खाते की भान्ति ब्याज दिया जाता है।

(v) **आवर्ती जमा खाता (Recurring Deposits Account) :** इस प्रकार के खाते में जमाकर्त्ता एक निश्चित समय के लिए प्रतिमाह निश्चित रकम जमा करते हैं। यह रकम कुछ विशेष परिस्थितियों के अलावा साधारणतया निश्चित समय से पहले नहीं निकलवाई जा सकती। जमाकर्त्ता की राशि मिलने वाली ब्याज की राशि भी उस खाते में जमा की जा सकती है। इस खाते में से सावधि खाते की तरह ही अन्य खातों की तुलना में अधिक ब्याज प्राप्त होता है।

2. **ऋण देना (Advancing of Loans) :** वाणिज्यिक बैंकों के मुख्य कार्यों में से एक अपने ग्राहकों को ऋण देना है। बैंकों के पास जो रुपया जमा के रूप में आता है उसमें एक निश्चित राशि नकद कोष में रखकर बाकि रुपया उधार दे दिया जाता है। बैंक निम्नलिखित प्रकार से ऋण प्रदान करते हैं।

(i) **नकद ऋण (Cash Credit) :** बैंक कुछ विशिष्ट प्रतिभूतियों के बदले व्यावसायियों को अग्रिम ऋण देता है। ऋण की राशि ऋणी का चालू खाते में जमा कर दी जाती है। नये ग्राहकों के लिए ऋण खाता खोल दिया जाता है। ऋणी अपनी आवश्यकतानुसार चैक के जरिए धनराशि निकाल सकता है परन्तु उसे ब्याज निकाली गई राशि पर देना होता है।

(ii) **माँग ऋण (Call Loans) :** बिल-बिचौलिए को अग्रिम किए गए अल्पाविधि ऋण 15 दिन से अधिक के लिए नहीं होते हैं। ये ऋण प्रथम श्रेणी बिलों तथा प्रतिभूतियों के लिए दिए जाते हैं। ऐसे ऋण अति अल्प नोटिस पर वापिस मांगे जा सकते है। सामान्य समय में इनका नवीनीकरण भी किया जा सकता है।

(iii) **ओवरड्राफ्ट (Overdraft) :** बैंक एक व्यवसायी को प्राय: उसके चालू खाते में शेष राशि से अधिक राशि चैक द्वारा निकलवाने की अनुमति प्रदान करता है। ऐसा व्यवसायी को एक विशिष्ट राशि तक की ओवरड्राफ्ट सुविधा प्रदान करके किया जाता है। परन्तु बैंक उससे ब्याज स्वीकृत ओवरड्राफ्ट की पूरी राशि ब्याज उसके चालू खाते से निकाली राशि पर लेता है।

(iv) **विनिमय बिल की भुनाई (Discounting of Bill of Exchange) :** यदि एक विनिमय बिल धारक लेनदार तुरन्त अपनी धनराशि चाहता है तो बैंक उसे विनिमय बिल की भुनाई करके धनराशि उपलब्ध कराता है। ऋण अवधि जोकि प्राय: 90 दिन से अधिक नहीं होती है, के

लिए ब्याज की कटौती करने के उपरान्त बैंक बिल की राशि बिल धारक के चालू खाते में जमा कर देता है। विनिमय बिल की अवधि पूर्ण बैंक बिल स्वीकार करने वाले देनदार के बैंकर से अपना भुगतान ले लेता है।

(v) **साख निर्माता (Credit Creation) :** आजकल बैंकों का एक मुख्य कार्य साख निर्माण करना है। बैंक अपनी प्रारम्भिक जमा से अधिक राशि उधार देकर साख निर्माण करता है।

(B) सहायक/गौण कार्य (Secondary Functions)

बैंक उपरोक्त प्राथमिक कार्यों के अतिरिक्त कई गौण कार्य जैसे ऐजेन्ट के रूप में तथा सामान्य उपयोगिता के कार्य भी करते हैं।

(1) **एजेन्ट के रूप में कार्य/ऐजन्सी कार्य :** बैंक अपने ग्राहकों के लिए विभिन्न तरीकों से एजेन्ट के कार्य करता है **:**

(i) **विभिन्न मदों का एकत्रीकरण और भुगतान :** बैंक अपने ग्राहकों की ओर से चैक, किराया, ब्याज एकत्र करता है और इसी प्रकार उनकी ओर से करो, बीमा की किस्तों आदि की अदायगी करता है।

(ii) **प्रतिभूतियों की खरीद तथा बिक्री :** बैंक अपने ग्राहकों के लिए विभिन्न प्रकार के शेयर्ज तथा स्टॉक की जानकारी प्राप्त करके उनकी ओर से प्रतिभूतियों को खरीदने, बेचने तथा उनको सुरक्षित रखने का कार्य करते हैं।

(iii) **ट्रस्टी तथा प्रबन्धक :** बैंक अपने ग्राहकों के आदेश पर उनकी सम्पत्ति के ट्रस्टी तथा प्रबन्धक आदि का भी कार्य करता है।

(iv) **रुपया भेजना :** एक स्थान से दूसरे स्थान पर रुपया भेजना भी बैंकों का एक महत्वपूर्ण कार्य है। यह काम बैंकड्राफ्ट द्वारा किया जाता है।

(v) **विदेशी मुद्रा का विक्रय :** बैंक विदेशी मुद्रा का क्रय-विक्रय करके अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार को बढ़ावा देते हैं। अधिकतर यह कार्य विदेशी विनिमय बैंकों द्वारा किया जाता है।

(vi) **सन्दर्भ पत्र :** बैंक अपने ग्राहकों की आर्थिक स्थिति की सूचना देश-विदेश व्यापारियों को देते हैं तथा देश-विदेश के व्यापारियों की आर्थिक स्थिति की सूचना अपने ग्राहकों को देते हैं।

(2) **सामान्य उपयोगिता की सेवाएँ :** व्यापारिक बैंक कुछ इस प्रकार के अन्य कार्य भी करते हैं। जिनसे समाज के लोगों को भी कुछ लाभ होता है। ये कार्य निम्नलिखित हैं :

(i) **लॉकर की सुविधा :** बैंकर्स अपने ग्राहकों को लॉकर्स की सुविधा भी प्रदान करता है, जिनमें लोग अपने सोने, चाँदी के जेवर तथा अन्य आवश्यक कागज-पत्र सुरक्षित रख सकते हैं। इसका वार्षिक किराया बहुत कम होता है।

(ii) **यात्री चैक तथा साख प्रमाण-पत्र :** बैंक अपने ग्राहकों को यात्रा में जाते समय नकद राशि साथ न ले जाकर, सुविधा और सुरक्षा की दृष्टि से यात्री चैक तथा साख पत्रों की सुविधा प्रदान करता है। इसके फलस्वरूप यात्री निश्चित होकर यात्रा कर सकते हैं।

(iii) व्यापारिक सूचनायें एवं आँकड़े : बैंक आर्थिक स्थिति से परिचित होने के कारण व्यापार सम्बन्धी सूचनाएं एवं आँकड़े एकत्रित करके अपने ग्राहकों को वित्तीय सलाह देते हैं।

(iv) वस्तुओं के वाहन में सहायता : बड़े-बड़े व्यापारी अपने ग्राहकों को माल भेजकर उसकी बिल्टी बैंक को भेज देते हैं। खरीददार बैंक में रुपए जमा करवाकर उस बिल्टी को छुड़वा लेते हैं और माल ले लेते हैं। इस प्रकार बैंक वस्तुओं के वाहन में सहायता देते हैं।

(C) सामाजिक कार्य (Social Function) :

आधुनिक समय में व्यापारिक बैंक देश के आर्थिक विकास तथा सामाजिक कल्याण के लिए निम्नलिखित महत्वपूर्ण कार्य भी करते हैं:

(i) व्यापारिक बैंक लोगों की निष्क्रिय जमा को एकत्रित करते हैं तथा उन्हें उत्पादक कार्यों में निवेश करते हैं। उसके फलस्वरूप में पूँजी निर्माण की दर को बढ़ाने में सहायता देते हैं।

(ii) बैंक पूँजी व्यापार में भी भाग लेते हैं। वे उद्योगों, कृषि, लघु उद्योग, व्यापारियों, यातायात आदि को दीर्घकालीन ऋण भी देने लगे हैं। वे अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार के लिए भी ऋण देते हैं।

(iii) व्यापारिक बैंक ग्रामीण विकास, बेरोजगारी उन्मूलन आदि की याजनाओं को लागू करने में सरकार की मदद करते हैं।

(iv) व्यापारिक बैंक देश के कमजोर वर्ग को ब्याज की कम दर पर ऋण देते हैं। ये छोटे दस्तकारों, भूमिहीन कृषि मजदूरों तथा निर्धन वर्ग को आवश्यकतानुसार ऋण देते हैं।

अन्ततः व्यापारिक बैंक केवल रुपया जमा करने तथा उधार देने की संस्था ही नहीं रह गई है बल्कि वे आर्थिक विकास और सामाजिक कल्याण के महत्वपूर्ण साधन बन गए हैं।

3.2.2 वाणिज्यिक बैंकों का महत्त्व (Importance of Commercial Banks) :

बैंकों का देश की अर्थव्यवस्था में महत्वपूर्ण स्थान है। आज की अर्थव्यवस्था का कोई भी क्षेत्र बैंक की सेवाओं से अछूता नहीं है। वाणिज्यिक बैंकों के कुछ महत्त्वपूर्ण लाभ/महत्त्व निम्नलिखित हैं:

(1) पूँजी निर्माण : बैंक निष्क्रिय लोगों द्वारा की गई बचतों को सक्रिय करके उद्यमियों को निवेश के लिए प्रदान करते हैं। इससे कृषि, उद्योग तथा व्यापार का विकास होता है, अतः देश में पूँजी निर्माण होता है।

(2) मुद्रा प्रणाली में लोच : मुद्रा की माँग बढ़ने पर बैंक अधिक साख मुद्रा जारी करते हैं और मुद्रा की माँग कम होने पर बैंक साख मुद्रा में संकुचलन करते हैं। इस प्रकार मुद्रा प्रणाली में लोच बनी रहती है।

(3) कीमत स्थिरता : कीमत वृद्धि के समय साख संकुचन द्वारा और कीमतों की कमी के दौरान साख का विस्तार करके कीमतों में स्थिरता लाई जाती है।

(4) बैंकिंग आदतों को प्रोत्साहन : बैंकों के विकास से लोग अपना भुगतान बैंकों द्वारा करने लगते हैं। इससे लोगों में बैंकिंग आदतों को विकास होता है। यह देश के लिए विकास का प्रतीक माना जाता है।

(5) **सरकारी योजनाओं में सहायता :** आर्थिक क्षेत्र में सरकारी योजना के अनुसार बैंक वित्त जुटाने का कार्य करते है।

(6) **मौद्रिक नीति को लागू करना :** बैंक की सरकार की मौद्रिक नीति को लागू करने का कार्य करते हैं। अन्य शब्दों में, तेजी व मंदी पर नियन्त्रण करने के लिए बैंक मौद्रिक नीति का उपयोग करते हैं।

(7) **बहुमूल्य वस्तुओं की सुरक्षा :** बैंक अपने ग्राहकों की बहुमूल्य वस्तुएँ—सोना, चाँदी, जेवर, कीमती दस्तावेज आदि—अपने पास सुरक्षित रखने के लिए लॉकर्स की सुविधा प्रदान करते हैं।

(8) **साख निर्माण तथा मुद्रा प्रेषण :** बैंक अपनी प्रारम्भिक जमाओं के उधार पर कई गुणा अधिक साख का निर्माण करते हैं तथा उत्पादन और रोजगार को प्रोत्साहन देते हैं।

(9) **अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार में सहायक :** विनिमय बैंक देशी मुद्रा को विदेशी मुद्रा में बदल कर विदेशी व्यापार को प्रोत्साहित करने का भी कार्य करते हैं।

3.2 भारत में व्यापारिक बैंकिंग का ढाँचा (Structure of Commercial Banking System in India) :

भारत में व्यापारिक बैंकों का वर्तमान ढाँचा निम्नलिखित तालिका से स्पष्ट हो जाता है—

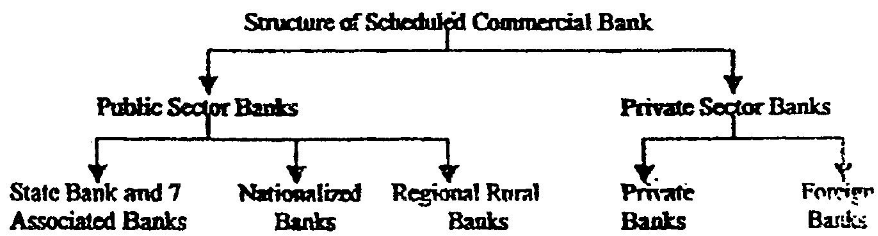

इस समय भारत में व्यापारिक बैंकों की संख्या 293 है। इसमें से 9.7 अनुसूचित बैंक तथा 196 क्षेत्रीय ग्रामीण बैंक है। भारत में व्यापारिक बैंकों को तीन भागों में बाँटा जा सकता है।

3.2.1. सार्वजनिक क्षेत्र के बैंक (Public Sector Banks)

सार्वजनिक क्षेत्र के कुल 223 बैंक है। इसमें स्टेट बैंक + 7 सहायक बैंक + 19 राष्ट्रीयकृत बैंक + 196 क्षेत्रीय ग्रामीण बैंक हैं।

भारत में 20 बैंकों का राष्ट्रीयकरण कर दिया गया है। राष्ट्रीयकृत बैंकों की संख्या अब कम होकर 19 हो गई है क्योंकि न्यू बैंक ऑफ इण्डिया का पंजाब नेशनल बैंक में विलय कर दिया गया है। स्टेट बैंक तथा 7 सहायक बैंक के स्वामित्व में सरकार का प्रमुख भाग है।

स्टेट बैंक ऑफ इण्डिया तथा 7 सहायक बैंक :

स्वतन्त्रता के पश्चात् भारतीय साख सर्वेक्षण समिति की सिफारिश पर इम्पीरियल बैंक का राष्ट्रीय करण करके 1 जुलाई, 1955 को स्टेट बेंक की स्थापना कर दी गई है। इस बैंक की 92% पूँजी सरकार के पास है तथा 8% पूँजी इम्पीरियल बैंक के पुराने हिस्सेदारों तथा दूसरे लोगों को बेच दी गई है। इस तरह से यह पूर्ण रूप से सरकारी बैंक नहीं है, परन्तु इस पर सरकार का लगभग पूर्ण नियन्त्रण है। 1 जनवरी, 1996 को भारत सरकार तथा रिजर्व बैंक के निर्णय के अनुसार काशीनाथ सेठ बैंक लिमिटेड को स्टेट बैंक में मिला दिया गया।

सहायक बैंक :

ग्रामीण साख सर्वेक्षण समिति ने यह भी सुझाव दिया था कि देसी रियायतों के बैंकों का भी स्टेट बैंक में विलय कर दिया जाए, परन्तु ये बैंक स्टेट बैंक में विलय होने के लिए तैयार नहीं हुए। इसलिए सन् 1959 में स्टेट बैंक ऑफ इण्डिया 'सहायक' अधिनियम पास करके इन बैंकों का स्टेट बैंक का सहायक बैंक बना दिया गया। इस समय 7 सहायक बैंक हैं :

(1) स्टेट बैंक ऑफ पटियाला

(2) स्टेट बैंक ऑफ हैदराबाद

(3) स्टेट बैंक ऑफ ट्रावनकोर

(4) स्टेट बैंक ऑफ बीकानेर तथा जयपुर

(5) स्टेट बैंक ऑफ मैसुर

(6) स्टेट बैंक ऑफ सौराष्ट्र

(7) स्टेट बैंक ऑफ इन्दौर

सहायक बैंकों की कम-से-कम 55% पूँजी स्टेट बैंक के पास तथा 45% पूँजी पुराने हिस्सेदारों तथा अन्य लोगों के पास हो सकती हैं। एक सहायक बैंक साधारण बैंकिंग कार्यों के अतिरिक्त स्टेट बैंक के प्रतिनिधि के रूप में भी कार्य करता है।

स्टेट बैंक के कार्य :

स्टेट बैंक के अधिकतर कार्य वहीं है जो इम्पीरियल बैंक के थे। साधारण बैंक के कार्यों के अतिरिक्त यह रिजर्व बैंक के एजेन्ट के रूप में भी कार्य करता है। उसके विभिन्न कार्यों में संक्षेप में नीचे बताया गया है।

(1) केन्द्रीय बैंकिंग सम्बन्धी कार्य : स्टेट बैंक देश का केन्द्रीय बैंक तो नहीं है, परन्तु वह उन स्थानों में जहाँ कि रिजर्व बैंक की अपनी शाखाएँ नहीं है, रिजर्व बैंक के एजेन्ट के रूप में केन्द्रीय बैंकिंग सम्बन्धी कार्य करता है, जैसे कि:

(i) सरकार के बैंक के रूप में कार्य : यह जनता से सरकार की ओर से धन प्राप्त करता है और सरकार आदेशानुसार धन का भुगतान करता है। वह सरकार द्वारा लिये जाने वाले ऋणों की व्यवस्था करता है।

(ii) बैंकों के बैंक के रूप में कार्य : वह व्यापारिक बैंक से जमाएँ स्वीकार करता है, आवश्यकता पड़ने पर उन्हें ऋण देता है, समाशोधन गृह का कार्य करता है और व्यापारिक बैंकों को धन प्रेषण की सस्ती सुविधाएँ भी देता है।

(2) साधारण बैंकिंग कार्य : स्टेट बैंक के साधारण बैंकिंग कार्य निम्न हैं :

(i) वह अन्य व्यापारिक बैंक की तरह साधारण जनता से विभिन्न प्रकार की जमाएं स्वीकार करता है।

(ii) यह बैंक भी अपने अतिरिक्त कोषों को सरकारी प्रतिभूतियों, रेलवे के प्रतिभूतियों, अन्य निगमों की प्रतिभूतियों, ट्रेजरी बिल में लगाता है।

(iii) स्टेट बैंक सरकारी प्रतिभूतियों, विभिन्न बिलों, स्वीकृत, प्रतिज्ञापत्रों, यात्रा के अधिकार पत्रों के आधार पर व्यवसायियों को ऋण देता है।

(iv) अन्य कार्य जैसे लोगों की कीमती वस्तुओं को अपनी सुरक्षा में रखना, साख प्रमाण-पत्र को जारी करना, अपनी शाखाओं और सम्बन्धित बैंकों के एजेण्ट के रूप में कार्य, बैंकिंग कम्पनियों के लिकवीडेट के रूप में कार्य, लघु उद्योगों एवं सरकारी समितियों को विशेष ऋण सुविधाएं एवं रिजर्व बैंक द्वारा सौंपे गए अनेक अन्य कार्य करता है।

(3) वर्जित कार्य : स्टेट बैंक के लिए कुछ कार्य करना वर्जित है : ऐसे कार्यों को निषिद्ध व्यवसाय कहते हैं। जैसे:

(i) अंशों की जमानत पर 6 माह की अवधि से अधिक के लिए ऋण देना, (ii) अपने कार्यालयों की आवश्यकता के अतिरिक्त कोई अन्य अचल सम्पत्ति खरीदना, (iii) 3 माह से अधिक की परिपक्वता तिथि के बिलों की पुन: कटौती करना या उनके आधार पर ऋण देना, (iv) दो अच्छे हस्ताक्षरों के बिना बिलों की पुन: कटौती करना, (v) किसी व्यक्ति या फर्म को पूर्व निश्चित सीमा से अधिक ऋण देना या बिलों की पुन: कटौती करना।

उद्देश्य (Objective) :

स्टेट बैंक का मुख्य उद्देश्य ग्रामीण क्षेत्रों को अधिक बैंकिंग सुविधाएं प्रदान करना तथा व्यापारिक हितों को ध्यान में रखते हुए सरकार की साख नीति को लागू करना है। इस बैंक के उद्देश्य निम्न हैं—

(i) स्टेट बैंक की स्थापना का मुख्य उद्देश्य देश के सबसे महत्त्वपूर्ण व्यापारिक बैंक को नियन्त्रण में लाना था, ताकि मौद्रिक नीति को लागू करने में सहायता मिल सके।

(ii) इसकी स्थापना का उद्देश्य ग्रामीण क्षेत्रों में बैंकिंग सुविधाओं का विस्तार करना था। इसके परिणामस्वरूप ग्रामीण जनता में बचत बढ़ाने की सम्भावना थी। इस बचत का प्रयोग देश में निवेश को बढ़ाने के लिए किया जाना था।

(iii) स्टेट बैंक की स्थापना का एक अन्य महत्त्वपूर्ण उद्देश्य कृषि एवं ग्रामीण उद्योगों के विकास के लिए आसान शर्तों की स्थापना, आर्थिक सहायता देना तथा केन्द्रीय भूमि विकास बैंक के ऋणपत्र (Debenture) खरीदना अथवा उनकी जमानत पर ऋण देना था।

(iv) लघु उद्योगों के लिए वित्त का प्रबन्ध करना तथा उनके विकास के विकास में सहायक सिद्ध होना।

(v) रिजर्व बैंक के प्रत्यक्ष नियन्त्रण में मैद्रिक नीति का पालन करना, उसे अधिक सक्रिय रखने में सहायक के रूप में कार्य करना।

(vi) बैंकिंग विकास सम्बन्धी कार्य करना तथा उसके बैंकों को सहायता करना।

राष्ट्रीयकृत बैंक (Nationalised Bank)

जब सरकार किसी बैंक को स्वयं ग्रहण कर लेती है तो उस क्रिया को बैंक का राष्ट्रीयकरण कहा जाता है। इस व्यवस्था में सम्बन्धित बैंक का अधिकार सरकार के हाथों में आ जाता है, उसके संचालन की व्यवस्था सरकार द्वारा की जाती है और उससे सम्बन्धित नीतियों का निर्धारण करना और उनका पालन भी सरकार द्वारा होता है। इस प्रकार राष्ट्रीयकरण करने पर किसी बैंक का स्वामित्व, संचालन तथा

नियन्त्रण सरकार के हाथ में आ जाता है। भारत में व्यापारिक बैंकों की संरचना का सबसे महत्त्वपूर्ण अंग राष्ट्रीयकृत बैंक है।

भारत सरकार ने 19 जुलाई, 1969 में 50 करोड़ से अधिक जमा वाले 14 बड़े बैंकों का राष्ट्रीयकरण किया जिनके नाम इस प्रकार हैं :

(i) पंजाब नेशनल बैंक, (ii) सैन्ट्रल बैंक ऑफ इण्डिया, (iii) यूनाइटेड कर्मिशयल बैंक, (iv) बैंक ऑफ इण्डिया, (v) बैंक ऑफ बड़ौदा, (vi) इलाहाबाद बैंक, (vii) यूनियन बैंक, (viii) केनरा बैंक, (xi) देना बैंक, (x) इण्डियन ओवरसीज बैंक, (xi) यूनाइटेड बैंक ऑफ इण्डिया, (xii) बैंक ऑफ महाराष्ट्र, (xii) सिंडिकेट बैंक, (xiv) इण्डियन बैंक। 15 अप्रैल, 1980 को 6 अन्य बैंकों का राष्ट्रीकरण कर दिया। इनमें से प्रत्येक की कुल जमा 200 करोड़ रुपये से अधिक है। ये बैंक थे : आन्ध्रा बैंक, पंजाब सिंध बैंक, न्यू बैंक ऑफ इण्डिया, विजया बैंक, कॉरपोरेशन बैंक तथा ओरियन्टल बैंक ऑफ कॉमर्स। 14 बैंकों के हिस्सेदारी को 87 करोड़ रुपये का मुआवजा दिया गया। इस समय 20 राष्ट्रीयकृत बैंक हैं। स्टेट बैंक तथा उसके साथ सहायक बैंकों के स्वामित्व पर सरकार का भाग बहुत अधिक है। इन्हें सार्वजनिक क्षेत्र का बैंक माना जाता है। 1993 में न्यू बैंक ऑफ इण्डिया का पंजाब नेशनल बैंक में विलय होने के कारण राष्ट्रीयकृत बैंकों की संख्या अब 19 है।

राष्ट्रीयकृत के उद्देश्य (Objectives of Nationalisation)

बैंकों का राष्ट्रीयकरण के प्रमुख उद्देश्य निम्नलिखित हैं :

(i) **बैंकिंग व्यवस्था में जनता का विश्वास :** बैंकों के राष्ट्रीकरण का मुख्य उद्देश्य बैंकिंग व्यवस्था में जनता का विश्वास बनाए रखना है। राष्ट्रीयकरण से पहले कई बैंक फेल हो चुके थे। इसलिए यह आवश्यक था कि बैंकिंग व्यवस्था में लोगों का विश्वास कायम रखा जाए।

(ii) **राष्ट्रीय बचत में वृद्धि :** राष्ट्रीयकरण का एक मुख्य उद्देश्य देश के ग्रामीण तथा शहरी क्षेत्रों में बचतों को जमाओं के रूप में संगठित करना था ताकि इन बचतों का उपयोग विकास के कार्यों में किया जा सके।

(iii) **बैंकिंग सुविधाओं का विस्तार :** राष्ट्रीयकरण का एक प्रमुख लक्ष्य ग्रामीण एवं अर्ध शहरी क्षेत्रें में बैंकिंग सुविधाओं का विस्तार किया जा सके।

(iv) **आर्थिक सत्ता का विकेन्द्रीकरण :** इसका एक प्रमुख उद्देश्य आर्थिक सत्ता का विकेन्द्रीकरण करना है। राष्ट्रीयकरण के फलस्वरूप देश की बैंकिंग व्यवस्था पर केवल कुछ बड़े उद्योगपतियों का ही नियन्त्रण नहीं रह सकेगा। इसका उद्देश्य असमानता को कम करना तथा निर्धनों की सहायता करना है।

(v) **प्राथमिक क्षेत्रों को अधिक साख :** बैंकों के राष्ट्रीयकरण का एक मुख्य उद्देश्य यह की देश के प्राथमिक क्षेत्र जैसे कृषि, लघु उद्योगों तथा छोटे व्यापारियों को पर्याप्त मात्रा में सरल तथा सस्ती साख प्रदान की जा सके।

(vi) **विकास के लिए वित्त :** बैंकों के राष्ट्रीयकरण का एक प्रमुख उद्देश्य यह है कि देश के आर्थिक विकास के लिए सरकार को उचित मात्रा में पूँजी प्राप्त हो सकेगी।

(vii) **सामान्य व्यक्ति को मदद पहुँचना :** बैंकों के राष्ट्रीयकरण का एक अन्य उद्देश्य देश के सामान्य नागरिकों, व्यापारियों को उचित दर पर सहायता पहुँचाना भी था।

राष्ट्रीयकृत बैंकों का आंशिक निजीकरण (Partial Privatisation of Nationalised Banks) :

राष्ट्रीयकृत बैंकों की कुछ समस्याओं के कारण उनकी पूँजी में होने वाली कमी को ध्यान में रखते हुए सरकार ने इसके आंशिक निजीकरण की स्वीकृति दे दी है। कुल 19 राष्ट्रीयकृत बैंकों में से पाँच बैंकों ने पूँजी जुटाने के लिए अपने कुछ शेयर सार्वजनिक क्षेत्र को बेच दिये। इन बैंकों में केन्द्रीय सरकार का स्वामित्व कम हो गया है। सन् 2002 तक निम्नलिखित पाँच बैंकों का आंशिक निजीकरण कर दिया गया है : बैंक ऑफ बड़ौदा, बैंक ऑफ इण्डिया, कॉरपोरेशन बैंक, देना बैंक, ओरियन्टल बैंक ऑफ कॉमर्स।

क्षेत्रीय ग्रामीण बैंक (Regional Rural Banks) :

2 अक्टूबर, 1975 को महात्मा गाँधी के जन्म दिवस पर क्षेत्रीय ग्रामीण बैंकों की स्थापना इस उद्देश्य से की गई कि ये ग्रामीण साख को बढ़ावा देंगे। सन् 1975 में रिजर्व बैंक के उप-गर्वनर श्री एम. नरसिम्हम की अध्यक्षता में, भारत सरकार ने एक कार्य समिति इस उद्देश्य से स्थापित की कि वह ग्रामीण क्षेत्र में लोगों के लिए संस्थागत साख के प्रवाह की समीक्षा करें। समिति इस निष्कर्ष पर पहुँची की व्यापारिक बैंक ग्रामीण क्षेत्रों के कमजोर वर्ग को विशेष रूप से और ग्रामीण समाज की सामान्य रूप से साख आवश्यकताओं की पूर्ति नहीं कर सकते। कार्यकारी समिति ने इसके विकल्प के रूप में यह सुझाव दिया कि एक नये प्रकार के बैंकों की स्थापना की जाए। ये बैंक सहकारी तथा व्यापारिक दोनों की विशेषताओं की पूर्ति जारी रखेंगे। इन बैंकों का विशेष कार्य मुख्य रूप से लघु सीमान्त किसानों, कृषि, श्रमिकों, कारीगरों तथा लघु उद्यमियों के ऋण तथा अन्य सुविधाएँ प्रदान करना है। इसके परिणामस्वरूप गांवों में कृषि, उद्योग तथा उत्पादन कार्यों का विकास किया जा सकेगा।

प्रत्येक क्षेत्रीय बैंक की अधिकृत पूँजी 1 करोड़ रुपए है तथा प्रदत्त पूँजी 25 लाख रुपए हैं। प्रदत्त पूँजी में केन्द्रीय सरकार का भाग 50%, राज्य सरकार का 15% तथा संस्थापक बैंक का 35% है। प्रत्येक क्षेत्रीय बैंक का संस्थापक एक राष्ट्रीयकृत बैंक होता है।

3.2.2. निजी क्षेत्र के बैंक (Private Sector Banks) :

निजी क्षेत्र के बैंक वे है जिनका स्वामित्व निजी क्षेत्र के पास होता है। भारत में बैंकिंग के विकास में निजी क्षेत्र ने महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाई है। सन् 1951 से 566 निजी क्षेत्र के बैंक थे। इसके बाद की अवधि से 1991 तक सार्वजनिक क्षेत्र के बैंकों की संख्या बढ़ती गई है तथा निजी क्षेत्र के बैंकों की संख्या निरन्तर कम होती गई है। निजी क्षेत्र के बैंकों के अन्तर्गत (1) विदेशी बैंक, (2) अनुसूचित बैंक, (3) गैर-अनुसूचित बैंक तथा (4) निजी क्षेत्र के नये बैंक शामिल किए जाते हैं। इस क्षेत्र के बैंकों को यह आश्वासन दिया गया है कि उनका राष्ट्रीयकरण नहीं किया जाएगा। 1991 के आर्थिक सुधारों के बाद से रिजर्व बैंक ने निजी क्षेत्र में नये बैंकों की स्थापना की स्वीकृति देनी आरम्भ कर दी है। जब गैर-निवासी भारतीय तथा विदेशी कम्पनियाँ भी निजी क्षेत्र के बैंकों के शेयर खरीद सकती हैं। अतएव निजी क्षेत्र के बैंकों को दो भागों में बाँटा जा सकता है।

(i) पुराने निजी क्षेत्र के बैंक : ये बैंक 1991 के आर्थिक सुधारों से पूर्व स्थापित है। इस समय 22 पुराने निजी क्षेत्र के बैंक हैं। इनमें से एक महत्त्वपूर्ण नाम है : भारत ओवरसीज बैंक, सिटी यूनियन बैंक लि., डिवैलपमेंट, क्रेडिट बैंक लि., नैनीताल बैंक लि., साउथ इण्डियन बैंक लि., सांगली बैंक लि., आदि।

(ii) नये निजी बैंक : नरसिम्हम कमेटी की रिपोर्ट की सिफारिश के अनुसार, 1991 के पश्चात् सरकार के निजी क्षेत्र में नये बैंक स्थापित करने की स्वीकृति देनी आरम्भ कर दी। निजी क्षेत्र

में केवल वे ही बैंक स्थापित किये जा सकते हैं जिनकी शेयर पूँजी कम से कम 100 करोड़ रुपए होगी, इन बैंकों पर रिजर्व बैंक का पूर्ण नियन्त्रण होगा। तथा इन्हें बैंकिंग कम्पनी रेगुलेशन अधिनियम 1949 के अन्तर्गत लाइसेंस दिए जाएँगें। इस समय 8 नए निजी बैंक कार्य कर रहे हैं :

(1) बैंक ऑफ पंजाब लि.

(2) सेन्चुरियन बैंक लि.

(3) ग्लोबल ट्रस्ट बैंक लि.

(4) एच. डी. एफ. सी. बैंक

(5) आई. सी. आई. सी. आई. बैंक

(6) आई. डी. बी. आई. बैंक लि.

(7) इंडकसइड बैंक लि.

(8) यू. टी. आई. बैंक लि.

3.3.3. विदेशी बैंक (Foreign Banks) :

भारत में निजी क्षेत्र में विदेशी बैंकों का महत्त्व बहुत अधिक है। विदेशी बैंक से आशय उस बैंक से है जिसका मुख्यालय विदेश में होता है। इस बैंक का अपने देश के कानून के अनुसार ही नियन्त्रण किया जाता है। यह भी निर्धारित किया जाता है कि विदेशी देशों के लिए न्यूनतम पूँजीगत आवश्यकता तीन शाखाओं में अर्थात् प्रथम शाखा के लिए 10 मिलियन अमेरिकी डॉलर, द्वितीय शाखा के लिए अतिरिक्त 10 मिलियन अमेरिकी डॉलर और तृतीय शाखा के लिए और 5 मिलियन अमेरिकी डॉलर तक कुल मिलाकर 25 मिलियन अमेरिकी डॉलर तक होनी चाहिए। अतिरिक्त शाखाओं की अनुमति वर्तमान शाखाओं का कार्य निष्पादन, उनके वित्तीय रिपोर्टों के परिणाम निरीक्षण आदि की जाँच आदि के पश्चात् दी जाती है। लाइसेंसों की संख्या विश्व व्यापार संगठन को दी गई भारत की प्रतिबद्धता के अनुरूप निर्धारित है जो वर्तमान में प्रति वर्ष 12 है। भारत में मुख्य विदेशी बैंकों में से कुछ निम्नलिखित हैं : ए.बी.एन. एयरोबैंक (एन. वी.) (एन. ए.) आबुधावी कमर्शियल बैंक लि. अमेरिकन, एक्स प्रैस बैंक लि., अरब बांग्लादेश बैंक लि., बैंक ऑफ अमेरिका, बैंक ऑफ सिलौन, चाईयना ट्रस्ट कमर्शियल बैंक लि. कॉमर्स बैंक, ए. डी. आदि।

विदेशी बैंकों का मुख्य कार्य निर्थित करने वाले को निर्थित की गई वस्तुओं के मूल्य के भुगतान की प्राप्ति की सुविधा प्रदान करना है। इसी तरह ये बैंक आयात व्यापार का भी प्रबन्धन करते है। यह बैंक देश के अन्तर्गत व्यापार के लिए वित्तीय सहायता भी प्रदान करते हैं। विदेशी बैंक साधारणतया बैंकिंग सम्बन्धी कार्यों को भी करते हैं, वे लोगों का रुपया जमा करते हैं। लोगों का जमा रकम पर ब्याज देते हैं, ड्राफ्टस जारी करते हैं, लॉकर्स की व्यवस्था करते हैं तथा अपने जमाकर्त्ताओं के प्रतिनिधि एवं सलाहकार के रूप में कार्य करते हैं।

अन्ततः संक्षेप में, भारत के व्यापारिक बैंकों के संरचना के अन्तर्गत सार्वजनिक क्षेत्र के बैंक एवं निजी क्षेत्र के देशी तथा विदेशी बैंक दोनों शामिल किए जाते हैं। भारत के व्यापारिक बैंकों की संरचना में राष्ट्रीयकृत बैंकों का सबसे अधिक महत्त्व है।

गैर-निष्पादक परिसम्पत्तियों की समस्या (Problems of Non-performing Assets) :

व्यापारिक बैंकों का मुख्य उद्देश्य अधिक लाभ को प्रदान करना तथा देश के आर्थिक विकास में सक्रिय योगदान प्रदान करना होता है। इन्हीं उद्देश्यों की प्राप्ति एवं पूर्ति के लिए बैंक जो नीतियाँ अपनाते हैं, उसका उनकी परिसम्पत्तियाँ (Assets) एवं देनदारियों से प्रत्यक्ष सम्बन्ध हैं। बैंकों की परिसम्पत्तियों एवं देनदारियों का स्तर उसकी Balance Sheet से पता चलता है। बैंक हमेशा ऐसी नीति अपनाते हैं जिससे कि वे अपनी परिसम्पत्तियों एवं देनदारियों की तरलता एवं लाभदायकता को बनाए रख सके। बैंकिंग व्यवस्था में कई परिसम्पत्तियाँ अब ऐसी भी हैं। जिनमें तरलता और लाभदायकता के बीच असन्तुलन आ जाता है। ऐसी परिसम्पत्तियों को गैर-निष्पादक सम्पत्तियाँ (Non-Performing Assets) कहा जाता है। ऐसी परिसम्पत्तियाँ है सावधिक ऋण, ओवरड्राफ्ट, कैश, क्रेडिट, सरकारी प्रतिभूतियाँ आदि। इससे प्राप्त होने वाली राशि सही समय पर प्राप्त नहीं हो पाती या अवधि बीतने पर भी चुकाई (Overdue) नहीं जाती। सरकारी प्रतिभूतियों, निगमों के बाण्ड डिवेंचर, जिन पर नियमन रूप से ब्याज प्राप्त नहीं हो पाता या इनसे प्राप्त होने वाली राशि बकाया राशि के रूप में इतनी रहती है। अन्य शब्दों में कोई परिसम्पत्ति तब गैर-निष्पादक, परिसम्पत्ति बन जाती है जब बैंक को इससे प्राप्त होने वाली आय समाप्त हो जाती है।

3.4. परिसम्पत्ति वर्गीकरण (Assets Classification) :

भारतीय रिजर्व बैंक ने परिसम्पत्तियों का वर्गीकरण चार श्रेणियों में विभाजित करते हुए किया है:

(i) मानक परिसम्पत्तियाँ (Standard Assets) : इसमें वे सम्पत्तियाँ शामिल की जाती है जिनसे कोई समस्या नहीं होती और इसमें जोखिम की मात्रा सामान्य से अधिक नहीं होती। सभी तरह के चालू ऋणों को इसमें शामिल किया जाता है।

(ii) अवमानक परिसम्पत्तियाँ (Sub-standard Assets) : इनमें वे सम्पत्तियाँ आती है, जिनकी अवधि दो वर्ष से अधिक नहीं होती। यदि इनकी त्रुटि या कमी को सुधारा नहीं जाता जब ऐसी सम्पत्तियों को साख दुर्बलता (Credit Weakness) के रूप में परिभाषित कर दिया जाता है और हानि की सम्भावना को सुनिश्चित किया जाता है।

(iii) संदिग्ध परिसम्पत्तियाँ (Doubtful Assets) : इनमें वे सम्पत्तियाँ शामिल की जाती हैं जो गैर-निष्पादक परिसम्पत्ति के रूप में दो वर्ष या उससे अधिक के लिए बनी रहती है और वर्तमान तथ्यों एवं परिसम्पत्तियों के आधार पर उनकी वसूली बहुत अधिक संदेहपूर्ण होती है। उस सम्पत्ति को भी संदिग्ध माना जाता है जो 31 मार्च, 2001 तक 24 महीनों की बजाए 18 महीनों के लिए अवमानक (Sub-Standard) श्रेणी में बनी रहे।

(iv) हानिगत परिसम्पत्तियाँ (Loss Assets) : इसमें वे सम्पत्तियाँ शामिल की जाती हैं जिनकी हानि की बैंक द्वारा पहचान कर ली गई है, परन्तु हानि की रकम या डूबी रकम को पूर्ण रूप से आंशिक रूप से रद्द नहीं किया गया है या बढ़े खाते में नहीं डाला गया है जैसे यदि उधार लेने वाला दिवालिया हो गया है, खोजा नहीं जा सकता, बेनामी ऋण, विवाद लक्षण आदि।

3.5. गैर-निष्पादक परिसम्पत्तियाँ (Non-Performing Assets) :

जैसा कि पहले भी परिभाषित किया जा चुका है कि गैर-निष्पादक परिसम्पत्तियाँ वे है जिनसे बैंक के लिए आय का प्रजनन समाप्त हो चुका है। जब किसी सम्पत्ति से होने वाली हानि का डर हो या दिए गए अग्रिम की वसूली शंकापूर्ण हो, उसे भी गैर-निष्पादक सम्पत्ति में वर्गीकृत किया जा सकता है। रिजर्व बैंक में 31 मार्च, 2001 के पश्चात् निम्नलिखित को गैर-निष्पादक सम्पत्ति माना है :

(i) सावधि ऋण के संदर्भ में प्रमुख राशि की किस्तों तथा ब्याज का भुगतान 180 दिनों से अधिक विलम्बित है।

(ii) ओवरड्राफ्ट, कैश क्रेडिट खाता 180 दिनों से अधिक की अवधि के लिए खाता प्रचलन में न रहा हो।

(iii) खरीदे गए और बट्टे के बिलों के मामले में 180 दिनों से अधिक अवधि के लिए बिल विलम्बित है।

(iv) कृषि उद्देश्यों के लिए दिए गए अग्रिम के मामले में ब्याज या किस्त दो फसल मौसमों, परन्तु $2\,^1/_2$ वर्षों की अवधि से अधिक नहीं, विलम्बित है।

(v) अन्य खातों के सन्दर्भ में कोई भी प्राप्त होने वाली राशि 180 दिनों से अधिक अवधि से विलम्बित है।

अव्यवस्थित/ठप्प क्रिया (Out of Order) : किसी खाते की ठप्प या बन्द क्रिया से अभिप्राय: उस बकाया राशि से है जो Balance Sheet की तिथि पर निरन्तर 6 महीनों से कोई राशि जमा नहीं हुई है तथा यदि थोड़ी बहुत राशि खाते में जमा भी है तो भी वह इतनी पर्याप्त नहीं कि उससे वसूल किए जाने वाले ब्याज की पूर्ति हो सके।

3.5.1 गैर-निष्पादक परिसम्पत्तियों के उदय होने के कारण (Causes of the Emergence of Non-performing Assets) :

बैंकों की गैर-परिसम्पत्तियों निष्पादक के उपरोक्त आँकड़े व्यक्त करते हैं कि भारत में पर्याप्त मात्रा में बैंकों की परिसम्पत्तियाँ हानिगत परिसम्पत्तियों में परिवर्तित हो चुकी है। परिसम्पत्तियों के आधार पर उनके उदय होने के निम्नलिखित कारण सम्भव हो सकते हैं :

1. **गलत प्रयोग :** बैंकों द्वारा जो भी राशि उधार दी जाती है, उधार लेने वाला इसका गलत प्रयोग करते हैं। इसका परिणाम यह होता है कि ऋणी से ऋण वसूल करना कठिन होता जाता है। उदाहरण के लिए ट्यूबवेल के लिए लिया गया ऋण किसान द्वारा शादी पर खर्च कर दिया जाना।

2. **उपयुक्त अनुवर्ती कारवाई न होना :** यदि बैंक अधिकारी ऋण देने के पश्चात् उसके उपयोग के बारे में उचित कारवाई नहीं करते तो भी यही समस्या उत्पन्न होती है। वे ऋणी से सर्टीफीकेट ले लेते हैं कि उसने ऋण राशि का प्रयोग उसी परियोजना में किया है, जिसके लिए उसने आवेदन दिया था, परन्तु वे सत्यापित नहीं करते कि प्रमाण-पत्र सही है या नहीं।

3. **जानबूझकर दोषी :** कुछ फर्म या पेशेवर उधार वाले होते हैं। ये फर्म या व्यक्ति बैंक अधिकारियों से ताल-मेल करके गलत ढंग से ऋण लेने में कामयाब हो जाते हैं। अन्य शब्दों में ये लोग व्यवसायिक कया जानबूझकर दोषी होते हैं : अर्थात् ऋण लेने के मामले में सबसे आगे परन्तु वापसी के मामले में सबसे पीछे।

1. परिचय (Introduction)

भारतीय रिजर्व बैंक की स्थापना हिल्टन यंग कमीशन (Hilton Young Commission) की सिफारिशों के आधार पर 1 अप्रैल, 1935 को हुई। यह भारत वर्ष का केन्द्रीय बैंक है तथा प्रत्येक देश के मौद्रिक एवं बैंकिंग क्षेत्र में विशेष महत्त्व है। सन् 1949 में रिजर्व बैंक का राष्ट्रीयकरण कर दिया गया। देश का केन्द्रीय बैंक होने की वजह से रिजर्व बैंक के मुख्य कार्यों में नोटों का निर्गमन सरकार के सभी बैंकिंग

कार्य, बैंकिंग प्रणाली का नियन्त्रण, साख नियन्त्रण एवं विनिमय नियन्त्रण आदि कार्य शामिल है। देश की मौद्रिक नीति के निर्माण में सरकार को सलाह देता है तथा देश के आर्थिक विकास हेतु कृषि, उद्योग एवं सेवा क्षेत्र (Service Sector) आदि सभी क्षेत्रों की वित्तीय आवश्यकताओं को पूरा करने के प्रबन्ध करता है। इसके अलावा रिजर्व बैंक देश में निर्धनता, क्षेत्रीय असमानता तथा बेरोजगारी दूर करने का प्रयास करता है।

भारतीय रिजर्व बैंक का प्रबन्ध एक केन्द्रीय संचालक बोर्ड द्वारा किया जाता है। वर्तमान संचालक बोर्ड में 20 सदस्य हैं। गवर्नर एवं चार उप-गवर्नर जिनकी नियुक्ति पांच वर्षों की अवधि के लिए सरकार द्वारा की जाती है, के अलावा चार संचालक, चारों स्थानीय संचालक बोर्डों (मुम्बई, कोलकता, मद्रास तथा नई दिल्ली) द्वारा मनोनीत किए जाते हैं। इसके अतिरिक्त 10 संचालक एवं एक सरकारी अधिकारी सरकार द्वारा मनोनीत किए जाते हैं। केन्द्रीय संचालक बोर्ड की 1 वर्ष में कम से कम 6 तथा प्रत्येक तीन महीने में कम से कम बैठक अवश्य होनी चाहिए। बैंक का केन्द्रीय कार्यालय (मुख्य कार्यालय) मुम्बई में स्थित है। इस बैक के 4 क्षेत्रीय कार्यालय तथा 14 शाखाएँ है।

2. उद्देश्य (Objective)

इस पाठ का उद्देश्य आपको इस बात से अवगत करवाना है कि रिजर्व बैंक देश के सन्तुलित आर्थिक विकास के लिए कौन-कौन से कार्य करता है इसके साथ-साथ इस पाठ का उद्देश्य आपको रिजर्व बैंक की मौद्रिक नीति से भी अवगत करवाना है अर्थात रिजर्व बैंक देश की मौद्रिक नीति का निर्माण एवं संचालन किन उद्देश्यों की पूर्ति के लिए करता है तथा इन उद्देश्यों की पूर्ति के लिए कौन-कौन सी तकनीकें अपनाई जाती हैं। मुख्यतः देश में साख विस्तार एवं साख नियन्त्रण (Credit Control) हेतु।

3. प्रस्तुतीकरण (Presentation)

इस अध्याय में रिजर्व बैंक के कार्यों, उसके द्वारा अपनाई जाने वाली मौद्रिक नीति के उद्देश्यों तथा मौद्रिक नीति के उद्देश्यों की पूर्ति हेतु रिजर्व बैंक द्वारा अपनाई जाने वाली तकनीकें जिनमें मुख्यतः देश में साख एवं करेन्सी तथा साख नियन्त्रण से सम्बन्धित तकनीकें हैं जिनका विस्तार से निम्नलिखित शीर्षकों के अन्तर्गत वर्णन किया गया है।

3.1. रिजर्व बैंक के कार्य (Functions of the Reserve Bank)

रिजर्व बैंक ऑफ इण्डिया एक्ट (1934) की प्रस्तावना (Preamble) के अनुसार बैंक के मुख्यः कार्य भारत में मौद्रिक स्थिरता स्थापित करने के लिए नोटों का निर्गमन करना तथा रक्षित कोषों को रखना तथा देश के हित में मुद्रा तथा साख प्रणालियों का संचालन करना है (The main functions of the bank are to regulate the issue of bank notes and keeping of reserve with a view of securing monetary stability in India and generally to operate the currency and credit system of the country to its advantage, RBI) द्वारा निम्नलिखित कार्य किए जाते हैं।

(1) **नोट जारी करना**–केन्द्रीय बैंक को लगभग एकाधिकार प्राप्त होने के कारण नोट जारी करने वाला बैंक के नाम से भी पुकारा जाता है। यद्यपि छोटे मूल्य के नोट जैसे एक रुपया और सिक्के भारत में भारत सरकार (वित्त मंत्रालय) द्वारा जारी किये जाते हैं। परन्तु रिजर्व बैंक ऑफ इण्डिया सरकार की ओर से यह काम संभालता है। अन्य नोट केन्द्रीय बैंक द्वारा जारी किये जाते हैं और उनकी गारंटी सरकार द्वारा दी जाती है।

(2) **सरकारी बैंकर**–कई देशों में केन्द्रीय बैंक की खोज एक ऐसी वित्तीय संस्था के रूप में की गई थी जो कोष सम्बन्धी एजेन्ट, बैंकर या परामर्शदाता के रूप में कार्य कर सकता हो तथा

सरकार को मौद्रिक एवं वित्तीय मामलों में भी सलाह दे सकता हो और सरकार के ट्रेजरी बिलों को प्रात करता हो। यह विदेशी विनिमय कोषों के संरक्षक का कार्य करता है। यह सरकारी ऋणों का प्रबन्ध करता है और सरकार को यह सलाह देता है कि वह किस प्रकार अपनी मुद्रा के आन्तरिक एवं बाहरी मूल्य को स्थिर स्तर पर बनाये रख सकती है।

गैर-निष्पादक परिसम्पत्तियों को कम करने के लिए विभिन्न, बैंकों ने इस सन्दर्भ में कई प्रस्तावों को स्वीकृति दी है और लम्बा समय लेने वाली खर्चीली वसूली प्रक्रिया के स्थान पर कोषों को पुनः व्यवस्थित करने के बारे में भी कदम उठाए हैं। DICGC (Deposit Insurance and Credit Gurantee Corporation) का आरक्षण यदि किसी ऋण के लिए उपलब्ध है तो दावों के लिए बैंक को सारी औपचारिकताएं पूरी कर लेनी चाहिए और दावों के जल्द निपटारे के लिए निगम को उचित अनुसरण करना चाहिए। इसके अतिरिक्त सरकार को विशेष रूप से शासक दल को जहाँ तक सम्भव हो सके, बैंकों के लेन-देन के मामलों में हस्तक्षेप कम से कम करना चाहिए।

(C) कठोर उपाय (Drastic Measures) :

यह अन्तिम उपाय है जिसके अन्तर्गत सिविल कोर्ट में मुकद्दमा डालना, वसूली न्यायाधिकरण में मुकद्दमा दायर करना, राज्य कानूनों/अधिनियमों के अन्तर्गत वसूली हेतु प्रमाण-पत्र प्राप्त करना एवं अधिदेश (Decree) का पालन करना आदि शामिल किये जाते हैं।

उपरोक्त वर्णित उपायों से भी यदि कोई परिणाम सामने नहीं आता तो यह कदम उठाए जा सकते हैं परन्तु इस सम्बन्ध में भी बैंकों को यह सुनिश्चित कर लेना चाहिए कि इस मुकद्दमेबाजी में अधिक समय न लगे और न ही इस दौरान ऋण के सन्दर्भ में की गई प्रतिभूति की गुणवत्ता कम हो जाए। अतएव मुकद्दमा दायर करते समय भी बैंक को सतर्क होकर कदम उठाने चाहिए।

अन्त में यह कहा जा सकता है कि उपरोक्त वर्णित उपायों को यदि सही ढंग से तथा सम्पूर्ण इच्छाशक्ति के साथ लागू किया जाए तो ऐसा कोई कारण नहीं है गैर-निष्पादित परिसम्पत्तियों की समस्या से निपटा न जा सके। परन्तु इसके अतिरिक्त यह भी आवश्यक है कि इस सन्दर्भ में नीति निर्धारित करते समय सरकार को भी बैंको को सम्पूर्ण समर्थन देना चाहिए। हालांकि बैंकों एवं वित्तीय संस्थाओं के डुबते ऋणों की वसूली में तेजी लाने के उद्देश्य से संसद ने प्रतिभूतिकरण विधेयक (Securitisation Bill) को नवम्बर 2002 में पारित कर दिया जिससे बैंक एवं वित्तीय संस्थाएँ बिना कोर्ट-कचहरी के चक्कर लगाए वसूली कर सकेंगे। जिससे इनके गैर-निष्पादन परिसम्पत्तियों (NPAS) में कमी आएगी।

4. सारांश (Summary) :

अतः उपरोक्त अध्ययन के आधार पर हम इस निष्कर्ष पर पहुंचे हैं कि व्यापारिक देश के औद्योगिक एवं व्यापारिक विकास का केन्द्र बिन्दु है इनके बिना देश में उद्योग धंधों का तेजी से विकास सम्भव नहीं है अर्थात् आधुनिक अर्थव्यवस्था में बैंक अति-महत्वपूर्ण भूमिका निभा रहे हैं। इस वजह से आजकल इन्हें अर्थव्यवस्था का धमनी केन्द्र (Nurve Centre) कहा जाता है।

आज बैंकों की सबसे बड़ी समस्या गैर-निष्पादित सम्पत्तियों का लगातार बढ़ना है। परन्तु उपरोक्त सुझाए गए सुझावों को प्रभावशाली ढंग से लागू करने एवं नए प्रतिभूतिकरण विधेयक के आने से ऋणों की वसूली में तेजी आएगी एवं बैंकों की गैर-निष्पादन सम्पत्तियों की समस्या का समाधान हो जाएगा।

5. प्रस्तावित पुस्तकें (Suggested Readings) :

1. भारतीय वित्तीय प्रणाली—टी.आर. जैन एवं ओ. पी. खन्ना।
2. भारतीय वित्तीय प्रणाली—कुलदीप गुप्ता एवं डॉ. राजकुमार।

6. नमनू के प्रश्न (Self-assessment Questions) :

1. व्यापारिक बैंक को परिभाषित करें तथा इनके मुख्य कार्यों का वर्णन कर।
   (Define Commercial Bank and explain their important Function)
2. आधुनिक समय में बैंकों के आर्थिक विकास में महत्त्व को स्पष्ट कीजिए।
   (Explain the importance of Commercial Banks in economic development)
3. बैंक की गैर-निष्पादन सम्पत्तियाँ क्या हैं? इनके उदय होने के कारण एवं समाधान हेतु सुझाव दीजिए।
   (What are non-performing Assets of Bank ? Explain the cause of emergence of NPAS and suggest for its solutions)

B.Com. Part-II

Paper : BC-206 : (i) Indian Financial System **Revised by : M.L. Singla**

Lesson No. : 6

Regional Rural : Banks, Co-operate Banking in India

विषय-सामग्री (Contents)

1. परिचय (Introduction)
2. उद्देश्य (Objective)
3. प्रस्तुतिकरण (Presentation)

   3.1 क्षेत्रीय ग्रामीण बैंक (Regional Rural Bank)

   3.1.1 क्षेत्रीय ग्रामीण बैंकों की स्थापना की आवश्यकता

   3.1.2 संगठन (Organisation)

   3.1.3 कार्य (Functions)

   3.1.4 उपलब्धियाँ एवं निष्पादन (Achievements & Performances)

   3.1.5 क्षेत्रीय ग्रामीण बैंकों की समस्याएँ (Problems of Regional Rural Banks)

   3.1.6 सुधार के लिए सुझाव (Suggestions for Improvement)

   3.2 भारत में सहकारी बैंक (Co-operative Banks in India)

   3.2.1 सहकारी बैंकों का संगठन (Organisation of Cooperative Banks)

   3.2.2 भारत में सहकारी बैंकिंग का महत्त्व या लाभ

   3.2.3 सहकारी बैंकिंग की धीमी प्रगति के कारण

   3.2.4 सुझाव (Suggestions)
4. सारांश (Summary)
5. प्रस्तावित पुस्तकें (Suggested Readings)
6. नमूने के प्रश्न (Self-Assessment Questions)

1. परिचय (Introduction)

आधुनिक युग में "बैंकिंग" आर्थिक विकास की आधारशिला बन चुकी हैं। बैंक शब्द का प्रयोग काफी समय से हो रहा है परन्तु इसका प्रारम्भ रहस्यमय है। एक विचारधारा के अनुसार इटली में जो व्यापारी रुपये के लेन-देन का कार्य करते थे उनको Banchi या Bancheri कहा जाता था। बैंक शब्द की उत्पत्ति उसी Banchi शब्द या ग्रीक भाषा के Banque शब्द से हुई। इन दोनों का अर्थ बैंक से है।

"बैंक एक ऐसी संस्था है जो लोगों के डिपोजिटों को स्वीकार करने, उनको उधार देने या अन्य एजेन्सी कार्य व साख निर्माण करती है।"

भारतीय बैंकिंग कम्पनी एक्ट के अनुसार, "बैंकिंग से अभिप्राय उधार देने अथवा निवेश के उद्देश्य से जमा के रूप में मुद्रा स्वीकार करना और इनका भुगतान मांगने पर चैक, ड्राफ्ट, आदेश या अन्य किसी प्रकार के भुगतान करना है।"

2. उद्देश्य (Objective)

इस पाठ का उद्देश्य आपको क्षेत्रीय ग्रामीण बैंकों की आवश्यकता, इनके संगठन, कार्य, उपलब्धियों, इनके सामने आने वाली समस्याओं एवं उनके सुझावों से अवगत कराना है। इसके अलावा इस अध्याय का उद्देश्य आपको भारत में सहकारी बैंकों की स्थिति एवं आर्थिक विकास में उनके योगदान सम्बन्धी जानकारी भी देनी है इस पाठ का अध्ययन करने के बाद आप इन सब बातों के बारे में विस्तार से जान सकेंगे।

3. प्रस्तुतीकरण (Presentation) :

इस अध्याय में क्षेत्रीय ग्रामीण बैंक (Regional Rural Banks) की आवश्यकता, कार्यों, उपलब्धियों एवं समस्याओं के साथ-साथ भारत में सहकारी बैंकों की स्थिति एवं उनके देश के आर्थिक विकास में योगदान की जानकारी दी गई है।

3.1 क्षेत्रीय ग्रामीण बैंक (Regional Rural Banks) :

2 अक्टूबर, 1975 को महात्मा गांधी के जन्म दिवस पर ग्रामीण बैंकों की स्थापना इस आशय से की गई कि ये ग्रामीण साख को बढ़ावा देंगे। सन् 1975 में रिजर्व बैंक के उप-गवर्नर श्री एम. नरसिम्हम की अध्यक्षता में भारत सरकार में एक कार्य समिति इस उद्देश्य से नियुक्त की। यह ग्रामीण क्षेत्र में लोगों के लिए संस्थागत साख के प्रवाह की समीक्षा करें। इस समिति ने ग्रामीण जनसंख्या के कमजोर वर्ग के लिए संस्थागत साख को उपलब्धता के बारे में अध्ययन करना था और इस उद्देश्य की पूर्ति के लिए वैकल्पिक एजेंसी सम्बन्धी सुझाव देने थे। समिति इस निष्कर्ष पर पहुंची कि व्यापारिक बैंक ग्रामीण क्षेत्रों के कमजोर वर्ग और ग्रामीण समाज की साख आवश्यकताओं की पूर्ति नहीं कर सकते।

समिति ने सुझाव दिया कि नए तरह के बैंकों की स्थापना की जाए। ये बैंक सहकारी तथा व्यापारिक बैंकों की विशेषताओं की पूर्ति जारी रखेंगे। सरकार ने कार्य समिति की सिफारिशों को स्वीकार कर लिया और पहले पाँच ग्रामीण बैंक 2 अक्टूबर, 1975 को स्थापित किये गए।

3.1.1 क्षेत्रीय ग्रामीण बैंकों की स्थापना की आवश्यकता :

क्षेत्रीय ग्रामीण बैंकों की स्थापना का मुख्य उद्देश्य आवश्यकता यह थी कि ये बैंक उन छोटे एवं सीमान्त किसानों, कृषि श्रमिकों तथा कारीगरों की साख एवं अन्य सुविधाएं उपलब्ध कराएंगे। जिनकी साख

सम्बन्धी आवश्यकताओं की पूर्ति सहकारी बैंक तथा व्यापारिक बैंक जैसी वर्तमान साख संस्थाएं पर्याप्त रूप से पूरी नहीं कर सकती हैं।

(i) **सहकारी बैंक :** जहाँ तक इन बैंकों की सहकारी साख संरचना का सम्बन्ध है, इनमें प्रबन्धकीय कौशल, साख देने के बाद निरीक्षण और ऋण वसूली का अभाव पाया जाता है। ये बैंक इस स्थिति में भी नहीं है कि वे आवश्यक संसाधनों का जुटाव कर सकें।

(ii) **व्यापारिक बैंक :** ये बैंक अधिकांश रूप से स्थित है और ये शहर उन्मुख है जहाँ तक कृषि साख का सम्बन्ध है ये बैंक एक महत्वपूर्ण भूमिका निभा सकते हैं। इसके लिए उन्हें अपनी विधियों, कार्यप्रणालियों, प्रशिक्षण को ग्रामीण वातावरण के अनुसार ढालना पड़ेगा। ऊँचे वैतनिक ढांचे और उच्च स्थापना व्यय के कारण इनकी प्रचलन लागत भी ऊँची है अत: इन परिस्थितियों में व्यापारिक बैंक ग्रामीण क्षेत्रों में कमजोर वर्ग के लिए सस्ती दर पर साख उपलब्ध नहीं करा सकते।

अतएव ग्रामीण, आवश्यकताओं के अनुरूप एक ऐसी संस्था की स्थापना की जरूरत महसूस की गई जो ग्रामीण उन्मुख हो तथा ग्रामीण क्षेत्र में जो कमजोर वर्ग की जरूरतों की पूर्ति कर सके। यह संस्था उपरोक्त दोनों दोषों को दूर रखकर, अनेक गुणों को मिला सके। क्षेत्रीय ग्रामीण बैंक, राष्ट्रीयकृत बैंकों के सहायक के रूप में, किसानों तथा ग्रामीण उद्योगों को दीर्घ काल में ऋण प्रदान कर सके बल्कि ग्रामीण गृहस्थों की जमाओं को भी गतिशील बना सके।

अतएव भारत में बैंक को वह संस्था स्वीकार किया गया है जो स्पर्श और स्थानीय भावना को जोड़ता है।

ग्रामीण बैंकों की संस्था वह संस्था है जो "स्थानीय आधारिक ग्रामीण उन्मुख तथा वाणिज्यिक रूप से संगठित है।"

3.1.2 संगठन (Organisation) :

RRBs की स्थापना बैंक द्वारा की गई है, जो सामान्य सार्वजनिक क्षेत्र का एक बैंक होता है। RRBs की विषय निर्वाचन समिति उन जिलों की पहचान करती है जिनको इस बैंक की जरूरत होती है। बाद में केन्द्रीय सरकार, राज्य सरकार तथा प्रायोजक बैंक की सलाह पर RRBs की स्थापना करती है। प्रत्येक RRBs की उन स्थानीय सीमाओं के अन्दर कार्य करना होता है जो केन्द्रीय सरकार द्वारा निर्धारित कर दी जाती है। बैंक अपनी कोई भी शाखा अधिसूचित क्षेत्र की सीमाओं के अन्दर स्थापित कर सकता है।

पूँजी (Capital) : प्रत्येक RRBs की अधिकृत पूँजी 5 करोड़ रुपये है जिसे केन्द्रीय सरकार घटा या बढ़ा सकती है, परन्तु यह इसकी 25 लाख रुपये की प्रदत्त पूँजी से कम नहीं होनी चाहिए। इस सारी अधिकृत पूँजी में केन्द्रीय सरकार, राज्य सरकार तथा स्पॉन्सर बैंक के बीच अभिदान का फॉर्मूला 60:20:20 निश्चित कर दिया गया है। केन्द्रीय बैंक का अंशदान NABARD द्वारा दिया जाता है।

प्रबन्ध (Management) : प्रत्येक क्षेत्रीय ग्रामीण बैंक का प्रबन्ध बोर्ड ऑफ डायरेक्टर्स द्वारा किया जाता है। RRBs के मामलों तथा व्यवसाय का सामान्य अधीक्षण दिशा और प्रबन्ध बोर्ड ऑफ डायरेक्टर्स के 9 सदस्यों के पास निहित होता है। केन्द्रीय सरकार 3 डायरेक्टरों, राज्य सरकार 2 डायरेक्टरों तथा स्पॉन्सर बैंक डायरेक्टरों को नामित करता है। चेयरमैन सामान्यतया स्पोन्सर बैंक का ही एक अधिकारी होता है परन्तु इसकी नियुक्ति केन्द्रीय सरकार द्वारा की जाती है। बोर्ड ऑफ डायरेक्टर्स को रिजर्व बैंक द्वारा

जारी की गई दिशाओं व मार्ग–दर्शन पर कार्य करना पड़ता है और व्यवसायिक सिद्धान्तों के अनुसार कार्य करना होता है। राज्य स्तर पर, राज्य स्तरीय समन्वित समिति की स्थापना भी की गई है ताकि विभिन्न (RRBs) के दृष्टिकोण में समरूपता बनी रहे।

साधन (Resources) : RRBs के मुख्य साधन हैं : (i) शेयर पूँजी, (ii) जनता से प्राप्त जमाएं, (iii) स्पॉन्सर बैंक से लिया गया ऋण तथा (iv) NABARD से पुनर्वित्त। भारतीय रिजर्व बैंक ने पुनर्वित्त सुविधाओं के लिए RRB को सहकारी बैंक के बराबर माना है अर्थात् 2% बैंक दर से नीचे। व्यापारिक बैंकों की भाँति RRBs को उपयुक्त या पात्र ऋणों के केवल घोषणा के बदले में तथा उनके द्वारा दिए अग्रिमों के अनुकूलन के लिए पात्र माना गया है। व्यापारिक बैंकों द्वारा दी गई दर के ऊपर RRBs को अपनी जमाओं के $1\,^1/_2$% अतिरिक्त ब्याज देने की दर देने की अनुमति दे दी गई है। इन बैंकों की जमाओं का बीमा भी भारतीय जमा बीमा तथा साख गारन्टी निगम आय किया गया है। यह बीमा जमाकर्त्ताओं के हितों को ध्यान में रखकर किया गया है।

3.1.3 कार्य (Functions)

क्षेत्रीय ग्रामीण बैंकों के प्रमुख कार्य निम्नलिखित हैं :

(i) कृषि क्रियाओं से सम्बन्धित कार्य : छोटे तथा सीमान्त किसानों एवं कृषि श्रमिकों को ऋण व अग्रिम देना, ये ऋण व्यक्तिगत रूप से अथवा समूहों में, अथवा सहकारी समितियाँ जिनमें कृषि बाजार समितियाँ, कृषि प्रकरण समितियाँ शामिल हैं अथवा अन्य उद्देश्यों के लिए दिये जा सकते हैं।

गैर-कृषि क्रियाओं से सम्बन्धित कार्य : कारीगरों छोटे उद्यमियों और व्यापार में लगे कम साधानों वाले व्यक्तियों वाणिज्य तथा उद्योग व कार्यक्षेत्र के अन्दर अन्य उत्पादक क्रियाओं के ऋण व अग्रिम देना।

(ii) ग्रामीण बचत को एकत्रित करके उसे उत्पादकता वाली क्रियाओं में लगातार प्रयोग करना।

(iii) ग्रामीण क्षेत्र में रोजगार के अवसर पैदा करना

(iv) ग्रामीण क्षेत्र में साख लागत को कम करना।

RRBs अब छोटे तथा सीमान्त किसानों की उपभोग जरूरतों की भी पूर्ति करते हैं और छोटे साधनों वाले ऋणियों की कुछ विशेष आवश्यकताओं जैसे चिकित्सा व्यय, शिक्षा, मनोरंजन की पूर्ति भी करते हैं।

3.1.4 उपलब्धियों एवं निष्पादन (Achievement and Performance) :

1. ग्रामीण बैंक पर कार्य समिति की सिफारिशों के आधार पर 1975 में शुरु में 5 RRBs स्थापित किए गए थे। अब इनकी 3 राज्यों में संख्या 191 हैं।

2. जून 1975 से जून 1999 तक इनकी शाखाओं की संख्या 17 से बढ़कर 14,500 हो गई और जिलों में चलन की संख्या 12 से बढ़कर 427 हो गई है।

3. मार्च 2001 तक इन बैंकों ने 37,027 करोड़ रुपये की कुल जमाएं एकत्रित कीं।

4. अल्पकालीन फसल ऋणों व कृषि क्रियाओं के लिए दीर्घकालीन ऋणों के रूप में कृषि कारीगरों, ग्रामीण तथा कुटीर उद्योग के लिए, फुटकर व्यापार तथा स्वरोजगार, उपभोग ऋण आदि के रूप में 15,579 करोड़ रूपये ऋण व अग्रिमों के रूप में दिए।

5. RRBs के कुल ऋणों का 95% भाग कमजोर वर्ग को दिया गया है।

6. 196 RRBs में से केवल 44 बैंकों ने लाभ अर्जित किए हैं।

7. 1994-95 में RRBs के पुन:स्थापन एवं पुन: पंजीकरण की प्रक्रिया शुरु की गई। 1997-98 के दौरान रिजर्व बैंक ने 90 RRBs को 200 करोड़ रुपए की सीमा तक पूँजी समर्थन दिया।

8. 2000-01 में RRBs ने 715 करोड़ रुपये का प्रचालन लाभ तथा 589 करोड़ रुपये का शुद्ध लाभ अर्जित किया।

9. नई 20 सूत्रीय कार्यक्रम में अनुसूचित जनजातियों के लिए कई IRDP तथा विशेष कार्यक्रम शुरु किये गए। कमजोर वर्गों के लिए ब्याज की विभिन्न दरें लागू की हैं। शारीरिक रूप से अपाहित व्यक्ति जो लाभकारी रोजगार प्राप्त किए हुए हैं, अपने लिए कृत्रिम अंग, हीयरिंग एड्ज व्हील्ड चैयरज आदि खरीदने के लिए RRBs से वित्त प्राप्त कर सकते हैं परन्तु उधार लेने वाले के लिए अधिकतम सीमा 2,500 रुपये प्रति ऋणी निर्धारित की गई है।

3.1.5 क्षेत्रीय ग्रामीण बैंकों की समस्याएँ (Problem of Regional Rural Banks) :

छोटे किसानों, कारीगरों और कृषि श्रमिकों की बचतें एकत्रित करने में RRBs ने महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाई है। ग्रामीण क्षेत्रों में इन बैंकों के स्थापित हो जाने से लोगों में बैंक सम्बन्धी आदतें जागृत हो गई है। परन्तु इस प्रगति के बावजूद भी RRBs निम्नलिखित समस्याओं का सामना कर रहे हैं–

1. **संगठन से सम्बन्धित समस्यायें :** चूँकि RRBs की कई एजेंसियों ने स्पॉन्सर किया है इसलिए इनकी कार्यप्रणाली में एकरूपता का अभाव पाया जाता है। इससे राज्य सरकारों में पूरा समर्थन नहीं मिल पाता है और न ही स्पॉन्सर बैंकों में उचित मॉनीटरिंग हो पाया है। दूसरे क्षेत्र प्रतिबन्ध भी इनके मार्ग में एक बाधा बन गया है। RRBs की सभी संस्थाओं के भीतर उचित प्रणाली एवं कार्यविधि का अभाव भी पाया जाता है तथा RRBs के स्टॉफ की भर्ती एवं प्रशिक्षण की ओर उचित ध्यान नहीं दिया गया है। तथा इनकी कई शाखायें राज्य सरकारों के दबाव के अन्दर खोली गई है। इन सभी कारणों के कारण इनके आगे नियंत्रण एवं प्रबन्ध सम्बन्धी कई समस्यायें बनी हुई हैं।

2. **वसूली से सम्बन्धित समस्याएँ :** इन बैंकों की ऋण वसूली स्थिति सही नहीं है। इनकी वसूली अभी भी 51% तथा 61% के बीच है। अतएव इनके खड़े भुगतान 49% तक है। इनके ऊँचे विलम्बित या खड़े भुगतान के लिए जो कारण जिम्मेदार हैं, वे आन्तरिक तथा बाहरी दोनों हैं आन्तरिक कारण है : कमजोर देखभाल वसूली के प्रति रुचि का अभाव, विकास के साथ ऋण देने का कोई भी तालमेल होना तथा ऋणों के अन्तिम प्रयोग में अनिश्चितता का होना। बाहरी कारणों में राजनैतिक हस्तक्षेप, ऋणों की वसूली में राज्य सरकारों को कम कानूनी तथा प्रशासनिक समर्थन आदि।

3. **स्पॉन्सरिंग बैंकों की शाखाएँ :** RRBs को स्पॉन्सर करने वाले कई बैंकों की शाखाएँ उस क्षेत्र में है जहाँ कि RRBs अपना प्रचालन कर रहे हैं, इससे कई विषमताएं उदय हुई हैं और इनके नियन्त्रण एवं प्रशासन पर होने वाले खर्च से बचा नहीं जा सकता है।

4. **दोषपूर्ण साख नीति :** ये बैंक केवल फसल के लिए ऋण तथा राज्य सरकार द्वारा चलाई जा रही योजनाओं के लिए ऋण पर ध्यान देते हैं। लघु तथा कुटीर उद्योगों की क्रियाओं को अधिक महत्त्व नहीं दिया जाता। ग्रामीण कारीगर तथा हस्तकार एवं अन्य रोजगार व्यक्तियों को इन बैंकों से सहायता नहीं मिलती।

5. **कम लाभदायकता :** कमजोर वर्गों को ऋण कम ब्याज दर पर उपलब्ध कराये जाते हैं जिसके कारण अधिक प्रचालन लागत से कम लाभ प्राप्त होते हैं। 196 RRBs बैंक में से केवल 44 बैंकों ने लाभ अर्जित किये।

6. **दोषपूर्ण भर्ती नीति :** यह आशा की जाती है कि RRBs बैंक अपने स्टॉक की नियुक्ति क्षेत्रीय या स्थानीय स्टॉफ द्वारा की जाये जिसके कारण योग्य स्टॉफ की कमी रहती है।

7. **अधिक ऋण व्यवहार लागत :** क्षेत्रीय ग्रामीण बैंक तथा व्यापारिक बैंक में सामान्यत: वेतनमान बराबर होता है और कई बार यह ग्रामीण व्यापारिक बैंक से भी अधिक होता है जिसके कारण इनकी ऋण व्यवहार की लागत ऊँची होती है।

8. **प्रबन्ध से सम्बन्धित समस्याएँ :** चूँकि सभी RRBs संस्थाएँ जिला स्तर पर स्थापित की गई हैं। स्पॉन्सर बैंकों ने इनकी देखभाल के लिए मध्यवर्गीय प्रबन्ध स्टॉफ की नियुक्ति की है। ये प्रतिनियुक्त स्टॉफ सदस्य इस अवस्था में नहीं है कि नई परिस्थिति में वे कोई स्वतंत्र निर्णय ले सकें। इसके अतिरिक्त RRBs के बोर्ड ऑफ डायरेक्टरों की मीटिंग भी नियमित रूप से नहीं होती और अशासकीय डायरेक्टरों की एक बड़ी संख्या इन बैंकों की कार्य प्रणाली में कोई विशेष रूचि नहीं दिखाती। इसके साथ-साथ कई ऐसी समस्याएँ भी है जो इन बैंकों की बहु-एजेंसी के कारण उत्पन्न होती है और इनकी कार्य प्रणाली भी सभी राज्यों/जिलों में एक समान नहीं है।

3.1.6 सुधार के लिए सुझाव (Suggestions for Improvement) :

RRBs द्वारा सामना की जाने वाले उपरोक्त सभी समस्याएँ सही है। इन समस्याओं के समाधानों की आवश्यकता है। अतएव इस सन्दर्भ में निम्नलिखित सुझाव दिए जा सकते हैं :

1. **RRBs की जीवन क्षमता में सुधार :** नरसिम्हम समिति के अनुसार, जिस उद्देश्य के लिए ये बैंक स्थापित किए गए थे उनका त्याग बिना इनकी क्षमता में सुधार लाने की जरूरत है। ग्रामीण बैंकिंग की ऐसी संरचना को विकसित करने के लिए सरकार को हस्तक्षेप करना चाहिए जो RRBs के स्थानीय लाभ वाले कार्यों को व्यापारिक बैंक की वित्तीय शक्ति व संगठनात्मक एवं प्रबन्धकीय कौशल से जोड़ सके।

2. **ब्याज दर :** क्षेत्रीय ग्रामीण बैंकों की ब्याज दर व्यापारिक बैंकों की ब्याज दरों के बराबर होनी चाहिए।

3. **ब्याज आय के उच्च स्तर को कमाना :** अपने आधिक्य नकद शेषों और सरकारी प्रतिभूतियों में वर्तमान में निवेशित कोषों पर इन बैंको को NABARD की सहायता से ब्याज आय का ऊँचा स्तर प्राप्त होना चाहिए।

4. **हानि-उठाने वाली संस्थाओं को बन्द करना :** कई RRBs ने बहुत हानि उठाई है और कुछ मामलों में हानि के कारण इनकी जमाओं के कुछ भाग नष्ट या क्षीण हो गये हैं अत: ऐसी इकाइयों को बन्द कर देने में अच्छाई है, क्योंकि बन्द न करने से ये दिवालिया हो जायेगी।

सन् 1986 में केलकर वर्किंग ग्रुप ने अपनी रिपोर्ट में इस बात को कहा कि जो कार्य RRBs को सौंपे गए है। ये उनके लिए बिल्कुल उपयुक्त है। अत: इस बात की बहुत जरूरत है कि RRBs के साधनों में वृद्धि करके इनके ऋण देने वाली प्रक्रिया या युक्तीकरण करके इनके स्टॉफ का उचित प्रशिक्षण देकर तथा राज्य सरकारों से सहयोग प्राप्त करके इनको नया जीवन देने की आवश्यकता है।

3.2 भारत में सहकारी बैंक (Co-operative Banks in India) :

सहकारी बैंक, बैंक का एक ऐसा विशेष रूप है जिसमें मनुष्य अपने आर्थिक हितों की उन्नत करने के लिए समानता के आधार पर स्वेच्छापूर्वक सम्मिलित होते हैं। सहकारिता शब्द दो शब्दों से मिलकर बना है। यह (Co) + कार्य (Operation)। इसका अर्थ है मिलजुल कर कार्य करना। यह एक ऐसा बैंकिंग संगठन है जिस में व्यक्ति स्वेच्छा से समान स्तर पर अपने आर्थिक हितों की उन्नति के लिए संगठित होते हैं। भारत में कृषि सहकारी बैंको का इतिहास सन् 1904 से प्रारम्भ हुआ।

3.2.1 सहकारी बैंकिंग का संगठन (Organization of Co-operative Bank) :

भारत में सहकारी बैंकिंग का वर्गीकरण दो तरह से किया जा सकता है :

1. **साख की अवधि के अनुसार :** साख की अवधि के अनुसार समितियों को दो भागों में बाँटा जा सकता है :

   (i) अल्पकालीन तथा मध्यकालीन समितियाँ : ये समितियाँ अपने सदस्यों को थोड़े समय या मध्यकाल के लिए कर्जे देती हैं। इन समितियों को प्राथमिक सहकारी साख समितियाँ कहा जाता है।

   (ii) दीर्घकालीन साख समितियाँ : ये समितियाँ लम्बे समय तक के लिए कर्ज देती है। ये अपने सदस्यों की भूमि गिरवी रखकर कर्जे प्रदान करती हैं। इनहें सहकारी कृषि तथा ग्रामीण विकास बैंक कहा जाता है।

2. **संगठन के आधार पर :** उपरोक्त दोनों समितियों को संगठन के आधार पर निम्नलिखित भागों में बाँटा जा सकता है :

   (a) अल्पकालीन साख समितियाँ तीन प्रकार की होती है :

   (i) प्राथमिक सहकारी साख समितियाँ

   (ii) केन्द्रीय सहकारी बैंक

(iii) राज्य सहकारी बैंक

(b) दीर्घकालीन सहकारी समितियाँ दो प्रकार की होती हैं :

(i) प्राथमिक सहकारी कृषि एवम् ग्रामीण विकास बैंक

(ii) केन्द्रीय सहकारी कृषि एवं ग्रामीण विकास बैंक

प्राथमिक कृषि सहकारी साख समितियाँ :

संसार में सब प्रकार की सहकारी समितियों में 44% सहकारी साख समितियाँ है। भारत में 64% सहकारी समितियाँ साख समितियाँ है। ये समितियाँ जर्मनी की रैफसीन समितियों के नमूनों पर बनाई गई है। भारत के सहकारिता आन्दोलन में इनका प्रमुख स्थान है। इन समितियों की मुख्य विशेषतायें हैं :

1. **सदस्यता तथा आकार :** इन साख समितियों का क्षेत्र सीमित रखा जाता है। विभिन्न राज्यों में इनकी सदस्य विभिन्न है परन्तु अधिकतर राज्यों में दस से अधिक व्यक्तियों को मिलाकर एक समिति बनाने की सुविधा दी गई है। राष्ट्रीय विकास परिषद् ने यह नियम स्वीकार कर लिया है कि ग्राम समुदाय को प्राथमिक इकाई मानकर सहकारी समितियों को बनाया जाना चाहिए।

2. **उद्देश्य :** इन समितियों का मुख्य उद्देश्य अपने सदस्यों को अल्पकालीन तथा मध्यकालीन साख देना है। ये समितियाँ अपने सदस्यों में बचत करने की प्रवृत्ति को भी प्रोत्साहन देती है।

3. **दायित्व :** सन् 1912 के सहकारी समिति कानून के अनुसार इन समितियों का दायित्व असीमित रखा गया है। परन्तु उत्तर-प्रदेश तथा बिहार को छोड़कर बाकि सभी राज्यों में इन समितियों का दायित्व असीमित ही रखा गया है।

4. **वित्त :** ये समितियाँ अपने कार्य को चलाने के लिए वित्त कई साधनों से प्राप्त करती है। इन साधनों को दो भागों में बाँटा जा सकता है।

   (a) आन्तरिक साधन : इन समितियों के आन्तरिक साधन कई है। जैसे प्रवेश फीस, शेयर, पूँजी, सदस्यों की जमा तथा रिजर्व फण्ड। ये समितियाँ थोड़ी रकम के शेयर जैसे 10 से 50 रुपये तक बेचकर पूँजी इकट्ठी करती है।

   (b) बाहरी साधन : ये समितियाँ सरकार, केन्द्रीय वित्त संस्थाओं, रिजर्व बैंक ऑफ इण्डिया आदि से धन प्राप्त करती है। इन समितियों को भेंट, दान तथा अनुदान आदि के द्वारा भी धन की प्राप्ति होती है।

5. **लाभ का वितरण :** ये समितियाँ अपने लाभ का 25% सुरक्षित कोष में रखकर बाकी अपने सदस्यों में बाँट देती है।

6. **निरीक्षण :** इन समितियों को अपना हिसाब-किताब रजिस्ट्रार द्वारा नियुक्त निरीक्षकों द्वारा अंकेक्षण करवाना पड़ता है।

7. **प्रबन्ध :** साख समितियों का प्रबन्ध प्रजातन्त्रात्मक तरीकों से किया जाता है। प्रत्येक सदस्य को एक ही वोट देने का अधिकार मिलता है, चाहे उसके पास कितने ही शेयर क्यों न हो। सभी सदस्यों

के संगठन को सामान्य समिति कहा जाता है। ये सदस्य अपने में से कुछ सदस्यों की प्रबन्ध समिति चुन लेते हैं। प्रबन्ध समिति के सदस्यों को वेतन नहीं दिया जाता, केवल सचिव को ही वेतन दिया जाता है।

8. **वर्तमान स्थिति :** 2001-2002 में प्राथमिक कृषि सहकारी समितियों की संख्या 83,000 से बढ़कर 1 लाख हो गई। इनकी जमा राशि 13,481 करोड़ रुपये है तथा इन्होंने 1705 करोड़ रुपये के ऋण दिये है। इनके 34,522 करोड़ रुपये के ऋण बकाया है।

केन्द्रीय सहकारी बैंक (Central Co-operative Bank)

इन बैंकों की स्थापना 1912 के सहकारी समिति कानून के अनुसार हुई। ये बैंक प्राथमिक सहकारी समितियों को वित्तीय सहायता प्रदान करने तथा उन्हें कुशलतापूर्वक संगठित करने में सहायक सिद्ध होते हैं। इनकी विशेषताएँ निम्नलिखित है :

1. **सदस्यता तथा कार्यक्षेत्र :** केन्द्रीय बैंक के सदस्य, साख, समितियाँ, दूसरे प्रकार की समितियाँ तथा सार्वजनिक क्षेत्र के प्रसिद्ध व्यक्ति बन सकते हैं। ये बैंक एक जिले या उसके किसी भाग की प्राथमिक समितियों की देखरेख करते है तथा उनको वित्तीय सहायता देते हैं। इन बैंकों का दायित्व सीमित होता है।

2. **कार्य :** इन बैंकों का मुख्य कार्य सदस्य समितियों को रुपया उधार देना है।

   (a) प्राथमिक कृषि साख समितियों को ये बैंक बिना किसी जमानत के रुपया उधार देते हैं। बाकि सदस्यों से जमानत लेते हैं।

   (b) ये बैंक साधारण कार्य बैंकिंग कार्य जैसे लोगों का रुपया जमा करना, रुपये का स्थानान्तरण आदि कार्य भी करते है।

   (c) कुछ कार्यों में ये बैंक प्राथमिक समितियों के निरीक्षण का कार्य भी करते हैं।

3. **कर्जे देना :** ये बैंक समितियों और व्यक्तियों को कर्जे देते हैं। समितियों को कर्जे उनके प्रतिज्ञा पत्रों के आधार पर दिए जाते हैं। व्यक्तियों को कर्जे के लिए जमानत देनी पड़ती है।

4. **प्रबन्ध :** इन बैंकों के सभी सदस्य सामान्य सभा का निर्माण करते हैं। इसका प्रबन्ध एक संचालक मण्डल द्वारा होता है जिसे साधारण सभा हर वर्ग "एक सदस्य एक वोट" के आधार पर चुनती है। इसकी संख्या अलग-अलग स्थानों पर भिन्न-भिन्न होती है परन्तु साधारणतया इनके सदस्य 10 में 24 तक है।

5. **प्रगति :** सन् 2001-2002 में 369 केन्द्रीय सहकारी बैंक कार्य कर रहे थे। इनकी जमा राशि 64,900 करोड़ है।

शासकीय सहकारी बैंक (State Co-operative Or Apex-Banks) :

प्रत्येक राज्य में एक प्रमुख सहकारी बैंक होता है। जो राज्य के केन्द्रीय बैंकों को रुपया उधार देता है और उनका निरीक्षण करता है इनकी स्थापना मैक्लगन कमेटी की सिफारिशों पर 1915 में चेन्नई तथा महाराष्ट्र में सर्वप्रथम की गई। अब प्रत्येक राज्य में एक राजकीय सहकारी बैंक है। इन बैंकों की

विशेषताएँ निम्न है—

1. **सदस्यता :** भारत में राजकीय बैंकों की सदस्यता दो प्रकार की है। कुछ राज्यों जैसे पंजाब, हरियाणा, बंगाल और कर्नाटक में केवल सहकारी समितियाँ ही इन बैंकों की सदस्य बन सकती है। परन्तु कुछ राज्यों में जैसे महाराष्ट्र, तमिलनाडु, बिहार और असम में सहकारी के साथ-साथ व्यक्ति भी इन बैंकों के सदस्य बन सकते हैं। परन्तु अब नये व्यक्तियों को सदस्य बनाना बन्द कर दिया गया है।

2. **प्रबन्ध :** इन बैंकों का संचालन करने के लिए सदस्य सहकारी समितियों के प्रतिनिधियों तथा व्यक्तियों की साधारण सभा होती है। इसके सदस्य अपने में से कुछ सदस्यों को डायरेक्टर चुन लेते हैं। ये बोर्ड ऑफ डायरेक्टर ही राज्य सरकार सहकारी बैंक का संचालन करते हैं।

3. **ऋण देना :** ये बैंक केन्द्रीय बैंक, प्राथमिक समितियों तथा व्यक्तिगत सदस्यों और सभी प्रकार के सहकारी संगठनों को कर्जे देते हैं। ये रिजर्व बैंक के पास भी धन जमा करते हैं और सरकारी प्रतिभूतियों में धन लगाते है।

4. **केन्द्रीय बैंकों के साथ सम्बन्ध :** ये बैंक राज्य के केन्द्रीय बैंकों की नीतियों और उनके कार्यों पर नियन्त्रण रखते हैं । केन्द्रीय बैंक के कार्यों में समन्वय भी करते हैं।

5. **रिजर्व बैंक के साथ सम्बन्ध :** राज्य सहकारी बैंक किसी राज्य के सहकारी आन्दोलन और रिजर्व बैंक के बीच एक कड़ी का काम करता है। रिजर्व बैंक इन्हें बैंक दर से भी कम ब्याज पर रुपया उधार देता है। ये उनकी प्रतिभूतियों के आधार पर ऋण देता है। मध्यकालीन ऋण देने का कार्य "राष्ट्रीय कृषि एवं ग्रामीण विकास बैंक" करता है।

3.2.2. भारत में सहकारी बैंकिंग का महत्त्व या लाभ

(1) **ब्याज की कम दर :** सहकारी बैंक किसानों तथा कारीगरों को सस्ते ब्याज पर रुपया उधार देते हैं। ये महाजनों के शोषण से बच जाते हैं। उन्हें उत्पादन कार्यों के लिए ही रुपया उधार मिलता है, इसीलिए फिजूल खर्ची भी नहीं कर पाते।

(2) **बचत को प्रोत्साहन :** सहकारी बैंकिंग बचत को प्रोत्साहन देती है। इसके द्वारा लोगों द्वारा बचाई गई आय का ठीक उपयोग भी सम्भव होता है।

(3) **ग्रामीण जीवन की उन्नति :** सहकारी बैंकों के फलस्वरूप किसानों की आय में वृद्धि होती है उनका जीवन-स्तर ऊँचा उठता है। भारत में सहकारी बैंकों को लाभ का 10% गाँवों के विकास पर खर्च करना होता है। इस प्रकार सहकारिता ग्रामीण जीवन की उन्नति का एक विशेष साधन है।

(4) **नैतिक लाभ :** सहकारी बैंक नैतिक गुणों का विकास करते हैं। सदस्यों में आत्मसम्मान, आत्मविश्वास की भावना को प्रोत्साहन मिलता है।

(5) **सामाजिक लाभ :** सहकारी बैंकिंग के असीमित उत्तदायित्व के कारण इसके सदस्य बैंकों के कार्यकरण पर नियन्त्रण रखते हैं। इनमें एक प्रकार की सामाजिक चेतना उत्पन्न हो जाती है।

ये बैंक सामाजिक कल्याण के कामों जैसे कुएँ, पार्क, नालियाँ, पीने का पानी आदि के निर्माण पर धन खर्च करते हैं।

(6) शिक्षा सम्बन्धी लाभ : सहकारी बैंकिंग के सदस्यों को बैंकिंग की शिक्षा मिलती है। उन्हें संगठन करने का ढंग आता है। उनके ज्ञान में वृद्धि होती है।

(7) कृषि उत्पादन में वृद्धि : सहकारी बैंक किसानों को अच्छे बीज, खाद तथा पशु खरीदने के लिए कर्ज देते हैं। उनका भूमि की चकबन्दी करने में सहायता देते हैं। सिंचाई तथा यातायात की कमी को पूरा करते हैं। इसके फलस्वरूप कृषि उत्पादन में काफी वृद्धि होती है। हरित क्रांति की सफलता का काफी महत्त्व है।

3.2.3. सहकारी बैंकिंग की धीमी प्रगति के कारण :

भारत में सहकारिता ने लगभग 94 वर्ष पूरे कर लिए हैं। परन्तु सहकारी बैंकिंग की कई कारणों से बड़ी धीमी प्रगति रही। अभी तक यह आन्दोलन किसानों की ऋण सम्बन्धी केवल 40% आवश्यकताओं को पूरा कर पाया है। देश की लगभग 60% जनसंख्या पर इसका प्रभाव पड़ा है। इसकी धीमी प्रगति के कारण निम्न हैं :

(1) सरकार का अधिक हस्तक्षेप : दूसरे देशों में सहकारी बैंकिंग का जन्म सदस्यों की इच्छा के परिणामस्वरूप हुआ था। परन्तु भारत में यह सरकार द्वारा चलाया गया था और सरकार का इस पर अब भी बहुत अधिक नियन्त्रण है।

(2) सहकारिता सिद्धान्त के ज्ञान का अभाव : भारत में सहकारी बैंकिंग का विस्तार मुख्य रूप में गांवों में हुआ है। हमारी ग्रामीण जनता सहकारिता का सच्चा अर्थ उनके उद्देश्य व आधार को नहीं समझती है। इसका कारण वे सहकारिता को भली-भाँति नहीं समझ पाते और इसके विकास में कोई रुचि रखते हैं।

(3) धन की कमी : भारत में सहकारी बैंकिंग के पास धन की कमी होती है, क्योंकि सदस्य अधिक धन नहीं बचा पाते। धन की कमी के कारण ये बैंक सदस्यों की बहुत कम जरूरतें पूरी कर पाते हैं।

(4) केवल उत्पादक ऋण : सहकारी बैंक केवल उत्पादक कार्यों के लिए ऋण देते हैं। किसानों को अपनी दूसरी जरूरतों को पूरा करने के लिए महाजनों पर निर्भर रहता पड़ता है।

(5) स्वार्थी लोगों द्वारा विरोध : गाँवों में महाजनों तथा मण्डियों में व्यापारी काफी विरोध करते हैं।

(6) अकुशल प्रबन्ध : भारत में अधिकतर बैंकों के पदाधिकारी प्रशिक्षित नहीं होते। इसलिए वे बैंकों का कार्य ठीक प्रकार से नहीं चला पाते। कर्जे में देरी तथा उनकी वसूली के लिए भी विशेष प्रयत्न नहीं किया जाता।

(7) भ्रष्टाचार तथा पक्षपात : सहकारी बैंकों में भ्रष्टाचार तथा पक्षपात की बुराई पाई जाती है पदाधिकारी अधिकतर अपने रिश्तेदारों, मित्रों और कृपा-पात्रों को दर्जा देते हैं।

(8) **असीमित दायित्व :** बैंकों का दायित्व असीमित होने के कारण गरीब लोग इसके सदस्य नहीं बनते। इस कारण इसके पास आर्थिक साधनों का अभाव रहता है।

(9) **समन्वय का अभाव :** भारत में प्राथमिक केन्द्रीय तथा राज्य सहकारी बैंकों में समन्वय का अभाव पाया जाता है। इस कारण इनके कार्यों में बाधा पड़ती है।

(10) **दोषपूर्ण लेखा निरीक्षण :** इन बैंकों के हिसाब-किताब की जाँच ठीक प्रकार से नहीं हो पाती। अधिकतर बेईमान पदाधिकारियों द्वारा हिसाब-किताब में गड़बड़ की जाती है।

(11) **क्षेत्रीय असमानता :** भारत में सहकारी बैंकिंग के सम्बन्ध में बहुत अधिक क्षेत्रीय असमानता पाई जाती है। सहकारी ऋण का 70% भाग आठ राज्यों जैसे पंजाब, हरियाणा, महाराष्ट्र, गुजरात, आन्ध्र प्रदेश, कर्नाटक तथा केरल द्वारा दिया जाता है, बाकि राज्यों में सहकारी बैंकिंग का उचित विकास नहीं हो पाया है।

3.2.4 सुझाव (Suggestions)

भारत में सहकारी बैंक का विकास बहुत धीमा रहा है। इस बैंकिंग प्रणाली की सफलता निम्नलिखित तत्वों पर निर्भर करती है :

(1) **पूँजी की पूर्ति :** इन बैंकों के पास पूँजी की कमी है उसे दूर करने का प्रयास किया जाना चाहिए। राष्ट्रीय कृषि एवं विकास बैंक सरकार के इन्हें कम ब्याज पर काफी रुपया उधार देना चाहिए।

(2) **सहकारी बैंकिंग का प्रचार :** सहकारी बैंकों के सिद्धान्तों तथा लाभों का काफी प्रचार किया जाना चाहिए, जिससे लोग उन्हें समझ सकें।

(3) **बचत :** सहकारी बैंकों को गाँवों तथा शहरों में छोटी-छोटी बचत इकट्ठी करने का प्रयत्न करना चाहिए।

(4) **फसलों के आधार पर साख :** इन बैकों को ऋण खड़ी फसल के आधार पर देना चाहिए। इससे उन्हें भी ऋण मिल सकेगा जिनके पास थोड़ी बहुत भूमि है।

(5) **प्रशिक्षण :** सहकारी बैंकिंग की शिक्षा दिलाने का प्रबन्ध किया जाना चाहिए। इसके लिए एक संस्था रिजर्व बैंक ने पूना में खोली थी। लगभग सभी राज्यों में सहकारी बैंकिंग का प्रशिक्षण दिए जाने का प्रबन्ध किया जाना चाहिए।

(6) **कम सरकारी नियन्त्रण :** सरकार को सहकारी बैंकिंग के संगठन पर अपना नियन्त्रण कम कर देना चाहिए। इसके फलस्वरूप सहकारी बैंकिंग आन्दोलन में जनता की रूचि अधिक बढ़ेगी।

(7) **दीर्घकालीन साख :** भूमि विकास बैंकों का अधिक विकास किया जाना चाहिए, जिससे किसानों को दीर्घकालीन ऋण मिल सके। वे उसकी सहायता से भूमि तथा खेती का सुधार कर सकें।

(8) **सरकारी सहायता :** यदि सरकार किसानों की सहायता बैंकों द्वारा करेगी तो ये अधिक लोकप्रिय बन जायेंगे।

(9) **प्रबन्ध व्यवस्था में सुधार :** इन बैंकों की प्रबन्ध व्यवस्था में सुधार किया जाना चाहिए। बैंकों के चुने हुए पदाधिकारियों का भी सहकारिता का प्रशिक्षण दिया जाना चााहिए। इनके हिसाब-किताब की जाँच के लिए उचित प्रबन्ध किया जाना चाहिए।

(10) **ऋण नीति में सुधार :** इन बैंकों को अपनी ऋण सम्बन्धी नीति में सुधार करना चाहिए। ऋण की राशि उन्हीं लोगों को दी जानी चाहिए जिन्हें उसकी वास्तव में जरूरत है। ऋणों के उपयोग की निगरानी की जानी चाहिए। ब्याज की दर कम की जानी चाहिए।

(11) **समितियों के रक्षित कोष :** प्रत्येक बैंक को अपने रक्षित कोष में अधिक जमा करने का प्रयत्न करना चाहिए जिससे आर्थिक संकट का सामना कर सकें।

4. सारांश (Summary) :

ग्रामीण साख को बढ़ावा देने के लिए 2 अक्टूबर, 1975 को महात्मा गांधी के जन्म दिवस पर क्षेत्रीय ग्रामीण बैंक की स्थापना की गई। इन बैंकों की स्थापना का मुख्य उद्देश्य ऐसे ग्रामीण श्रमिकों एवं कारीगरों तथा छोटे एवं सीमान्त किसानों को साख व अन्य सुविधायें उपलब्ध करवाना थे। जिनकी साख सम्बन्धित आवश्यकताओं को सहकारी तथा व्यापारिक बैंक पूरी नहीं कर सकते। इस अध्याय का अध्ययन करने के बाद हम इस निष्कर्ष पर पहुँचे हैं कि क्षेत्रीय ग्रामीण बैंक ऋण वसूली सम्बन्धी समस्या से जूझ रहे हैं जिसका मुख्य कारण इनकी दोषपूर्ण साख नीति व अयोग्य स्टॉफ का होना है। इसी प्रकार से बैंकों की ऋण व्यवहार लागत का अधिक होना तथा इनके प्रबन्धन सम्बन्धी समस्या का होना है। इन कारणों का इन बैंकों की लाभदायकता पर विपरीत प्रभाव पड़ रहा है। हालांकि इन बैंकों की पुन संरचना का कार्य प्रारम्भ होने के बाद से इन बैंकों की कार्य प्रणाली में सुधार हुआ है और उम्मीद की जा रही है कि ये बैंक भविष्य में आम आदमी के बैंक बनकर रहें जिससे ग्रामीण विकास की गति को बल मिल सके।

इसी प्रकार से सहकारी बैंकों के अध्ययन से यह निर्ष्कष निकलता है कि ये बैंक ग्रामीण क्षेत्र में लोगों के अल्पकालीन, मध्यकालीन एवं दीर्घकालीन साख प्रदान कर रहें हैं। दीर्घकालीन ऋण अपने सदस्यों की भूमि को गिरवी रखकर दिया जाता है। हालांकि इस बैंकों के विकास की गति भी धीमी है। जिसे बढ़ाने के लिए इस अध्याय में सुझावों पर ध्यान देना आवश्यक है ताकि ये बैंक ग्रामीण क्षेत्र के लोगों की वित्त पूर्ति कर सकें और ग्रामीण विकास और तेज हो सके।

प्रस्तावित पुस्तकें (Suggested Readings) :

1. भारतीय वित्तीय प्रणाली—कुलदीप गुप्ता एवं डॉ. राजकुमार।
2. भारतीय वित्तीय प्रणाली—टी. आर. जैन एवं ओ. पी. खन्ना।

6. नमूने के प्रश्न (Self Assessment Questions) :

1. भारत में क्षेत्रीय ग्रामीण बैंकों की स्थापना की आवश्यकता क्या थी?

   (What was the necessity of establishing Regional Rural Banks ?)

2. क्षेत्रीय ग्रामीण बैंकों के मुख्य कार्यों का वर्णन करो। उनकी उपलब्धियाँ क्या हैं?

   (Describe the main functions of Regional Rural Banks. What are their achievements?)

3. क्षेत्रीय ग्रामीण बैंकों की मुख्य समस्याओं की व्याख्या करें। इनके सही कार्यकरण के लिए आप क्या सुझाव देंगे?

   (Explain the main problems being faced by the Regional Rural Banks. What steps will you suggest for their smooth functioning ?)

4. सहकारी बैंक क्या हैं? भारत में सहकारी बैंक के संगठन की व्याख्या करें?

   (What is Co-operative Banks/Discuss the organisation of Co-operative Banks in India.)

5. भारत में सहकारी बैंकों के क्या फायदे एवं कमियाँ हैं? इनके सुधार के लिए सुझाव दीजिए।

   (What are the benefits and draw backs of Co-operative Banks in India ? Give suggestions for their improvement.)

B.Com. Part-II

Paper : BC-206 (i) Indian Financial System **Revised by : M.L. Singla**

Lesson No. : 7

Credit Creation Process
Functions and Its Limitation

विषय-सामग्री (Contents)

1. परिचय (Introduction)

2. उद्देश्य (Objective)

3. प्रस्तुतीकरण (Presentation)

   3.1 साख निर्माण की परिभाषा (Definition of Credit Creation)

   3.2 साख निर्माण की प्रक्रिया एवं आधारभूत धारणाएँ (Basic concept used in the Process of Credit Creation)

   3.3 साख निर्माण की मान्यताएँ (Assumptions of Credit Creation)

   3.4 साख निर्माण की प्रक्रिया (Process of Credit Creation)

   3.5 साख निर्माण की सीमाएँ (Limitations of Credit Creation)

   3.6 क्या बैंक वास्तव में साख निर्माण करते है। (Do Banks really create credit)

4. सारांश (Summary)

5. प्रस्तावित पुस्तकें (Suggested Readings)

6. नमूने के प्रश्न (Self-Assessment Questions)

1. परिचय (Introduction)

आजकल व्यापारिक बैंकों के कार्यों में साख निर्माण को सबसे अधिक महत्त्वपूर्ण कार्य माना जाता है। प्रो. आर. एस. सेयर्स (Prof. R. S. Sayers) के अनुसार, बैंक केवल मुद्रा का व्यापार ही नहीं करते हैं, बल्कि महत्त्वपूर्ण अर्थ में मुद्रा के निर्माता भी है।" ("Banks are not merely traders in money, but also in an important sense, manufacturers of money") लोग बैंक में रुपया जमा करवाते हैं। बैंक जमाकर्त्ताओं को उनकी जमा राशि पर ब्याज देते हैं तथा साथ ही उन्हें यह विश्वास भी दिलाते हैं कि उन्हें जब भी अपना रुपया चाहिए, वे बैंक से ले सकते है। इस उद्देश्य की पूर्ति के लिए बैंक कुल जमा राशियों का कुछ भाग अपने पास नकदी में रखकर बाकी रकम आगे उधार दे देते हैं। बैंक उधार दी गई राशि को उधार लेने वालों के खाते में जमा करके साख निर्माण करते हैं। दूसरे शब्दों में हम कह

सकते हैं कि व्यापारिक बैक मुद्रा के व्यापारी हैं। जो लोगों की बचत स्वीकार करते हैं तथा जरुरतमंद लोगों को ऋण उपलब्ध करवाते हैं। इस प्रकार बैंकों में जमाओं के आधार पर साख का निर्माण होता है। आजकल साख निर्माण व्यापारिक बैंकों का कार्य माना जाता है।

2. उद्देश्य (Objectives)

इस पाठ का उद्देश्य आपको साख निर्माण के अर्थ एवं साख निर्माण की प्रक्रिया को समझाना है। इसके साथ-साथ निर्माण की सीमाएँ स्पष्ट करना है। अत: इस पाठ का अध्ययन करने के बाद आप समझ सकेंगे कि बैंकिंग गतिविधियों से कैसे साख निर्माण होता है। परन्तु यह साख निर्माण सीमित मात्र में होता है। इसके क्या कारण है।

3. प्रस्तुतिकरण (Presentation)

इस अध्याय में साख निर्माण का अर्थ एवं परिभाषा साख निर्माण की प्रक्रिया और साख निर्माण की सीमाएँ अर्थात् बैंक असीमित मात्रा में साख निर्माण नहीं कर सकते आदि विषयों की व्याख्या निम्नलिखित शीर्षकों के अन्तर्गत की गई है—

3.1 साख निर्माण की परिभाषा (Definition of Credit Creation)

साख निर्माण की कुछ महत्त्वपूर्ण परिभाषाएँ निम्नलिखित हैं—

1. प्रो. आर. एस. सेयर्स (Prof. R. S. Sayers) के अनुसार, "साख निर्माण से अभिप्राय व्यापारिक बैंकों की उस शक्ति से है जिसके द्वारा वह ऋण देकर अपनी गौण जमा में वृद्धि कर सकते हैं।" (Credit Creation means that power of Commercial Banks with the help of which these banks can increase their derivative deposits by advancing loans, Prof. R. S. Sayers.

2. न्यूलन के अनुसार, "साख निर्माण से अभिप्राय: व्यापारिक बैंकों की उस शक्ति से है जिसके द्वारा वे ऋण देकर प्रतिभूतियों में निवेश करके गौण जमा कर विस्तार करते हैं।"

   (Credit Creation refers to the power of Commercial Banks to expand secondary deposits either through the process of making loans or through investment in securities—Newlyn)

3. हॉम के अनुसार, "गौण जमा का निर्माण साख निर्माण ही कहलाता है।"

   (The Creation of derivative deposits is identical with what is commonly called the creation of credit—G.N. Halm)

जब बैंक किसी व्यक्ति को उधार देते है तो उधार दी गई रकम ऋणों के खाते में जमा की जाती है जिसे गौण जमा कहा जाता है। गौण जमा के साथ ही साख निर्माण शुरू हो जाता है। जब यह राशि खर्च होती है तो किसी दूसरे व्यक्ति की आय बनती है। व्यक्ति इसे फिर बैंक में जमा करवा देता है। बैंक को प्राथमिक जमा प्राप्त होती है फिर उधार देता है। इस प्रकार एक बार फिर गौण जमा में वृद्धि होती है। गौण जमा की मात्रा में वृद्धि करने की क्रिया को ही साख का निर्माण कहा जाता है।

संक्षेप में साख निर्माण व्यापारिक बैंकों में वह शक्ति है जिससे वे ऋणों, अग्रिमों तथा निवेशों के द्वारा अपनी गौण जमा (Secondary Deposits) का प्राथमिक जमा से अधिक विस्तार करते है।

3.2. साख निर्माण प्रक्रिया की आधारभूत धारणाएँ (Basic concept used in the Process of Credit Creation)

साख निर्माण का चक्र

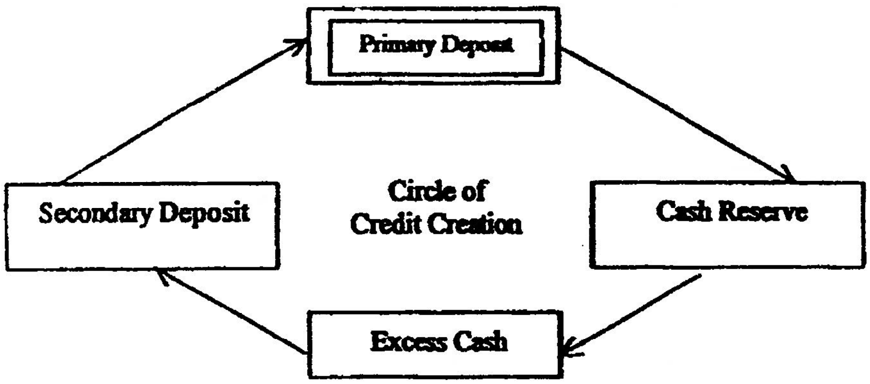

चित्र

1. **प्राथमिक जमा (Primary Deposits) :** जब कोई व्यक्ति अपनी बचत नकद मुद्रा के रूप में बैंक में जमा करवाता है। बैंक इस व्यक्ति का नया खाता खोलकर रकम जमा कर लेता है। तो उसे प्राथमिक जमा कहते है।

2. **नकद कोष (Cash Reserve) :** बैंक में जो रुपया जमा करवाते है। वे किसी भी समय रुपया बैंक से निकलवा सकते है। परन्तु बैंकों का यह अनुभव है कि जमाकर्ता एक ही समय में अपने सारे पैसे नहीं निकलवाते। इसलिए बैंक कुल जमा राशि में कुछ भाग नकद के रूप में रख लेते हैं ताकि समय पर जमाकर्ताओं की आवश्यकता को पूरा कर सके। कुल जमा का जो भाग अपने पास नकद के रूप में रख लेते हैं वह नकद कोष अनुपात कहलाता है।

3. **फालतू कोष (Excess Reserve) :** बैंक के पास कुल जमा में से नकद कोष रखने के बाद जो राशि बचती है वह अत्याधिक कोष (Excess Reserve) कहलाता है। यही राशि ऋण देने के लिए प्रयोग की जाती है जिससे साख का निर्माण होता है।

4. **साख जमा या गौण जमा (Derivative or Secondary Deposits) :** बैंक जब किसी व्यक्ति को ऋण देता है तो बैंक उसे नकद भुगतान ने करके उसका खाता खोलकर उसे बैंक द्वारा रुपया निकालने का अधिकार दे देता है। इस प्रकार की जमा को साख जमा व गौण जमा कहते हैं। साख जमा प्राथमिक जमा का ही परिणाम होता है। इसलिए कहा जाता है कि जमा राशियाँ साख को जन्म देती है तथा साख, जमा राशियों को जन्म देते हैं।

5. **साख गुणक (Credit Multiplier) :** साख गुणक कुल जमा में वृद्धि व प्राथमिक जमा में वृद्धि के अनुपात से है। यदि प्राथमिक जमा से 100 रु. की वृद्धि होती है तथा कुल जमा में 1000 रु. की वृद्धि होती है। तो साख गुणक 10 कहा जाएगा। (Credit Multiplier = 1/Cash Reserve Ratio)

3.3. साख निर्माण की मान्यताएँ (Assumption of Credit Creation)

साख निर्माण कुछ मान्यताओं पर आधारित है-

1. सभी जमाकर्ता अपना पैसा बैंक से एक ही समय पर नहीं निकलवायेंगे।

2. बैंक अपने ग्राहकों को ऋणों का भुगतान नकद न करके खाता खोलकर बैंक की सुविधा प्रदान करता है।

3. केन्द्रीय बैंक की साख नियन्त्रण नीति में कोई परिवर्तन नहीं होता।

4. सभी बैंक अपनी जमाराशि के एक निश्चित अनुपात को उधार दे देते हैं।

5. जनता लेन-देन तथा व्यापार सम्बन्धी सभी भुगतान चैकों द्वारा करती है।

6. सभी बैंक न्यूनतम कानूनी नकद कोष अनुपात (Minimum Legal Reserve Ratio) का पूरी तरह पालन करते है।

7. देश में व्यापारिक तथा औद्योगिक स्थिति सामान्य है।

8. साख निर्माण की आरम्भिक अवस्था में सभी बैंकों के पास अतिरिक्त कोष होते है।

9. बैंक में लोग केवल मांग जमा के रूप में ही रकम जमा करते हैं।

10. साख के बदले में दी गई जमानत जोखिम पूर्ण नहीं है।

3.4. साख निर्माण की प्रक्रिया (Process of Credit Creation)

साख निर्माण की क्रिया को दो भागों में किया जा सकता है—

1. एक बैंकिंग प्रणाली
2. बहु-बैंकिंग प्रणाली।

1. एक बैंकिंग प्रणाली में साख का निर्माण (Credit Creation in a Single Banking System) :

इस प्रणाली के अन्तर्गत एक ही बैंक कार्य करता है। सभी प्रकार के लेन-देन इसी बैंक से किये जाते है। साख निर्माण की इस प्रक्रिया को दो प्रकार से समझा जा सकता है।

(i) साख गुणक का आधार (Basis of Credit Multiplier)

बैंक प्राथमिक जमा के आधार पर ही साख का निर्माण करते है। उदाहरण के तौर पर एक व्यक्ति बैंक में 1000 रुपये प्राथमिक जमा के रूप में जमा करवाता है। बैंक उसमें से 10 प्रतिशत नकद रूप में रखकर बाकी 900 रुपए ऋण दे देता है। यह ऋण नकद न देकर बैंक में खाता खोलकर चैक से पैसे निकलवाने की सुविधा प्रदान कर देता है। इस प्रकार बैंक के पास जमा में 900 रुपये की वृद्धि हुई। इसको गौण जमा (Secondary Deposits) भी कहा जा सकता है। बैंक आगे इसमें से 10 प्रतिशत नकद रखकर बाकी 810 रुपए किसी दूसरे व्यक्ति को ऋण दे देता है। उसे भी खाता खोलकर चैक से पैसा निकलवाने की सुविधा दी जाती है। इस प्रकार बैंक द्वारा जमा खातों के रूप में ऋण देकर साख निर्माण करता है। इस प्रकार कुल साख का निर्माण 9,000 रु. होगा तथा बैंक की

कुल जमा = नकद जमा + गौण जमा

1000 रु. + 9,000 रु. = 10000 रु. होगी।

इसको एक Table द्वारा समझा जा सकता है।

Table No. 1

Primary Deposits	**Cash Reserve Ratio**	**Secondary Deposits**
Rs.	**Rs.**	**Rs.**
1000	100	900
900	90	810
810	81	729
729	72.9	656.1
656.1	65.61	590.49
Total 10,000	**1,000**	**9,000**

So, the Cash reserve ratio will be = $\frac{\text{Primary Deposits}}{\text{Total Deposits}}$

$$\text{Credit Multiplier} = \frac{1}{\text{Cash Reserve Ratio}}$$

इस प्रकार बैंक में साख निर्माण क्रिया नकद जमा व ऋण देने से चलती रहती है।

(ii) चिट्ठे का आधार (Basis of Balance Sheet) :

बैंक द्वारा साख निर्माण की प्रक्रिया को चिट्ठे द्वारा भी समझा जा सकता है। पहले चरण में प्राथमिक जमा 1,000 रु आने पर चिट्ठे की स्थिति

Table No. 1

दायित्व (Liabilities)	Rs.	सम्पत्ति (Assets)	Rs.
प्राथमिक जमा (Primary Deposits)	1,000	कोष (Reserve)	1,000
कुल (Total)	1,000		1,000

जब बैक नकद कोष में से 10 प्रतिशत अपने पास संचय रखकर बाकी 900 रु. ऋण के रूप में दे देता है। ऋणी खाता खोलकर चैक से सुविधा लेता है। ऋण देने के बाद चिट्ठे की स्थिति इस प्रकार होगी।

Table No. 2

दायित्व (Liabilities)	Amt. Rs.	सम्पत्ति (Assets)	Amt.
जमा (Deposits)	1,000	कोष (Reserve)	1,000
जमा (Deposits)	900	ऋण (Loans)	900
कुल (Total)	1,900	कुल (Total)	1,900

इसी प्रकार बैंक यह प्रक्रिया आगे जारी रखता है। जिससे साख निर्माण में वृद्धि होती रहती है।

2. बहु-बैंकिंग प्रणाली द्वारा साख का निर्माण (Credit Creation by Multiple Banking System) :

वास्तव में किसी भी अर्थव्यवस्था में एक से अधिक बैंक होते हैं। एक अकेला बैंक फालतू नकदी से अधिक साख का निर्माण नहीं कर सकता। परन्तु एक से अधिक बैंक अपनी प्राथमिक जमाओं से कई गुणा अधिक साख का निर्माण कर सकते है। इसका उद्देश्य भी दो प्रकार से समझा जा सकता है।

(i) साख गुणक का आधार (Basis of Credit Multiplier)

जब किसी अर्थव्यवस्था में एक से अधिक बैंक होते है। तो एक व्यक्ति 1000 रु. मान लीजिए Bank A में जमा करवाता है। बैंक A इसमें से 900 रु किसी ऐसे व्यक्ति को ऋण देता है जिसका खाता Bank B में है। वह 900 रु. का चैक Bank B में जमा करवा देगा। इसी प्रकार Bank B ऐसे व्यक्ति को 810 रु. ऋण देगा। जिसका खाता Bank C में हो। इसी प्रकार अलग-अलग बैंकों में नकद जमा के रूप में पैसा मिलता है और ऋण की प्रक्रिया भी चलती रहती है। जिससे अधिक साख का निर्माण किया जा सकता है। यह इस मान्यता पर आधारित है कि सभी जमाकर्ताओं को एक ही समय पैसा निकलवाने की आवश्यकता नहीं होती।

Credit Creation By Multiple Banking System

Banks	New Deposits	Reserve Ratio (10%)	Loans or Secondary Deposits
	Rs.	Rs.	Rs.
A	1,000	100	900
B	900	90	810
C	810	81	729
D	729	72.9	656.1
E	—	—	—
	↓	↓	↓
	upto	upto	upto
Total	10,000	1,000	9,000

इस प्रकार बैंकिंग प्रणाली 9,000 रु. का साख निर्माण करेगी। इसको रेखा चित्र की सहायता से भी समझा जा सकता है।

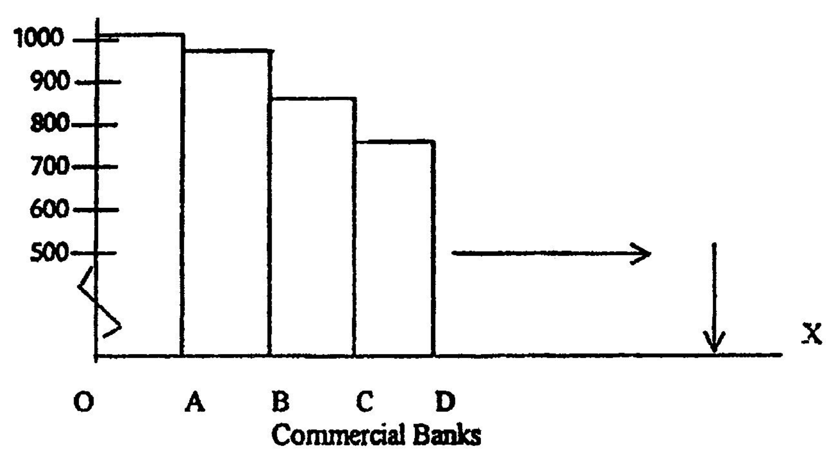

उपरोक्त चित्र से ज्ञात होता है कि Bank A के पास 1,000 रु. प्राथमिक जमा के आधार पर इसने 900 रु. की साख दी। इसी प्रकार Bank B ने 900 रु. के आधार पर 810 रु. की साख दी तथा Bank C ने 810 रु. के आधार पर 729 रु. की साख दी। इस प्रकार कुल जमा 10,000 रु. तक हो जायेगी।

(ii) चिट्ठे का आधार (Basis of Balance Sheet)

मान लीजिए अर्थव्यवस्था में काफी बैंक विद्यमान है। सबसे पहले एक ग्राहक Bank A में 1,000 रु. प्राथमिक जमा के रूप में जमा करवाता है। Bank A 10 प्रतिशत सुरक्षित रखकर 900 रु. उधार या ऋण के रूप में देता है। जो Bank B में जमा हो जाती है। इसी प्रकार Bank B 10% नकद रखकर बाकी 810 रु. ऋण दे देता है। जो Bank C में जमा हो जाता है। इस प्रकार यह क्रम चलता रहता है।

इसको चिट्ठा बनाकर आसानी से समझा जा सकता है।

Balance Sheet

Bank A

Liabilities	Amt. Rs.	Assets	Amt. Rs.
Deposits	1,000	Reserves	1,000
Total	1,000	Total	1,000

Bank A (After Loan)

Liabilities	Amt. Rs.	Assets	Amt. Rs.
Deposits	1,000	Reserves	1,000
		Loans	9000
Total	1,000	Total	1,000

Bank B (प्रारम्भिक)

Liabilities	Amt. Rs.	Assets	Amt. Rs.
Deposits	900	Reserves	900
Total	900	Total	900

Bank B (अन्तिम)

Liabilities	Amt. Rs.	Assets	Amt. Rs.
Deposits	900	Reserves	90
		Loans	810
Total	900	Total	900

Bank C (प्रारम्भिक)

Liabilities	Amt. Rs.	Assets	Amt. Rs.
Deposits	810	Reserves	810
Total	810	Total	810

Bank C (अन्तिम)

Liabilities	Amt. Rs.	Assets	Amt. Rs.
Deposits	810	Reserves	81
		Loans	729
Total	810	Total	810

इस प्रकार यह क्रम तब तक चलता रहेगा जब तक 1,000 रु. के प्राथमिक जमा के फलस्वरूप कुल जमा बढ़कर 10,000 रु. नहीं हो जाती।

3.5. साख निर्माण की सीमाएं (Limitations of Credit Creation)

बैंकों द्वारा साख निर्माण की बहुत सी सीमाएं है। बैंक असीमित मात्रा में साख का निर्माण नहीं कर सकते। साख का निर्माण बहुत ही मान्यताओं पर आधारित होता है। हर समय मान्यताएं अपनी कसौटी पर खरी नहीं उतरती। साख की सीमाओं का वर्णन इस प्रकार है।

1. **नकद कोष का अनुपात (Cash Reserve Ratio) :** साख का निर्माण बैंकों के नकद कोष अनुपात पर निर्भर करता है। यदि बैंक नकद कोष अधिक रखना चाहते है तो साख का कम निर्माण होगा। यदि कम नकद कोष रखना चाहते है तो साख का निर्माण अधिक होगा।

   तालिका बनाकर इसको समझा जा सकता है।

नकद कोष अनुपात	प्राथमिक जमा	कुल जमा	साख निर्माण
	रु.	रु.	रु.
10% = 9,000	1,000	10,000	10,000 – 1,000
5% = 19,000	1,000	20,000	20,000 – 1,000
20% = 4,000	1,000	5,000	5,000 – 1,000

2. **प्राथमिक जमाओं की राशि (Amount of Primary Deposits) :** प्राथमिक जमा की राशि पर ही साख का निर्माण निर्भर करता है। यदि प्राथमिक जमा की राशि अधिक होगी तो साख का निर्माण भी अधिक होगा। इसके विपरीत यदि प्राथमिक जमा की राशि कम होगी तो साख का निर्माण भी कम होगा। इस प्रकार साख निर्माण की यह मुख्य सीमा बन जाती है।

3. **केन्द्रीय बैंक की साख नीति (Credit Policy of the Central Bank) :** व्यापारिक बैंकों की साख निर्माण की प्रक्रिया किसी देश के केन्द्रीय बैंक की साख नीति पर प्रभावित होती है। यदि केन्द्रीय बैंक की साख विस्तार की नीति अपनाता है तो बैंकों की साख निर्माण शक्ति बढ़ती है। यदि केन्द्रीय बैंक साख संकुचन की नीति अपनाता है तो बैंकों की साख निर्माण शक्ति में कमी आ जाएगी।

4. **जनता की बैंकिंग सम्बन्धी आदतें (Banking Habits of the People) :** किसी देश में रहने वाली जनता की बैंकिंग लेन-देन की आदतें साख के निर्माण प्रक्रिया को बहुत अधिक प्रभावित करती है। यदि लेन-देन चैक के द्वारा किया जाता है तो साख निर्माण में वृद्धि होती है इसके विपरीत लेन-देन नकद रुपये में किया जाता है तो साख निर्माण प्रक्रिया में साख की मात्रा में कमी हो जाएगी। इस प्रकार बैंकिंग लेन-देन की एक सीमा बन जाती है।

5. **बैंकों की साख नीति (Credit Policy of the Banks) :** यदि सभी बैंक परस्पर सहयोग से काम करते हैं तो अधिक साख का निर्माण होगा। जब एक बैंक साख निर्माण करता है तो दूसरा बैंक उसमें पूरा सहयोग नहीं करता। तो इस प्रकार साख निर्माण में कमी आ जाएगी।

6. **चलन में रिसाव (Leakage in Circulation) :** जब बैंकों में जमा के रूप में राशि आती है। किसी भी चरण (Stage) में चैक प्राप्त करने वाला व्यक्ति बैंक से पैसे निकालकर खर्च कर देता

है। या बैंकिंग व्यवस्था से बाहर जमा करा देता है तो इसका प्रभाव साख निर्माण में कमी करेगा, जो सीधा विपरीत प्रभाव डालता है।

7. **व्यापारिक एवं औद्योगिक स्थिति (Commercial and Industrial Conditions) :** साख निर्माण का प्रक्रिया पर किसी देश की व्यापारिक एवं औद्योगिक स्थिति का काफी प्रभाव पड़ता है। मन्दी काल में ऋण की मांग कम होने पर बैंक अधिक साख का निर्माण नहीं कर पाते। ऐसी स्थिति से ऋण की मांग बढ़ने के कारण साख निर्माण में वृद्धि होना भी स्वाभाविक है।

8. **उधार लेने वालों का स्वरूप (Nature of Borrowers) :** यदि उधार लेने वाले व्यक्ति विश्वास योग्य है और वे बैंकों को ऋण के बदले अच्छी जमानत दे सकते है तो बैंक अधिक साख का निर्माण कर सकते हैं। इसके विपरीत यदि प्रतिभूतियाँ (जमानत) जोखिमपूर्ण है तो बैंक कम साख का निर्माण करेंगे। क्राउथर ने ठीक ही कहा है—"बैंक हवा में से साख का सृजन नहीं करता, वह सम्पत्ति के अन्य रूपों को मुद्रा में परिवर्तित करता है।" अर्थात् बैंकों की शक्ति इतनी नहीं होती कि वे व्यर्थ के पदार्थों को कीमती पदार्थों में परिवर्तित कर सके। लेकिन वे स्थिर सम्पत्ति को मुद्रा या तरल सम्पत्ति में बदल सकते हैं। बैंक प्रतिभूति को अपनी परिसम्पत्ति के रूप में लेकर उसके बदले में अपनी मुद्रा देते हैं।

9. **देश में मुद्रा मात्रा (Supply of Money in the Country) :** बैंकों की साख निर्माण की शक्ति देश में प्रचलित मुद्रा की मात्रा पर भी निर्भर करती है। यदि देश का केन्द्रीय बैंक अधिक मात्रा में मुद्रा का प्रचलन करता है तो लोगों के पास मुद्रा की मात्रा बढ़ जायेगी और बैंकों में जमा राशि भी बढ़ जायेगी। जिससे बैंक अधिक मात्रा में साख का निर्माण कर सकते है। इसके विपरीत केन्द्रीय बैंक द्वारा मुद्रा का प्रचलन कम करने की स्थिति में लोगों के पास मुद्रा की मात्रा भी कम हो जाती है और वे बैंकों में जमा भी कम करते हैं। जिससे बैंकों की नकद जमा भी कम हो जाती है। जिससे उनकी साख निर्माण की शक्ति भी घट जाती है अत: साख निर्माण की मात्रा का देश में प्रचलित मुद्रा की मात्रा से सीधा सम्बन्ध है।

10. **जमाकर्ताओं में विश्वास (Confidence of Depositors) :** यदि लोगों का बैंकों पर पूरा विश्वास है तो वे अपने धन को बैंकों में जमा रखेंगे। जिससे बैंकों को नकद जमाएं बढ़ जायेंगी और वे अधिक साख का निर्माण कर सकेंगे। इसके विपरीत यदि लोगों का बैंकों से विश्वास उठ गया है तो बैंकों में कम पैसा रखेंगे जिससे बैंकों की नकद जमाएं कम होंगी और बैंक कम साख का निर्माण कर पायेंगे।

3.6 क्या बैंक वास्तव में साख निर्माण करते है। (Do Banks Really Create Credit)

अर्थशास्त्रियों में इस सम्बन्ध में मतभेद पाया जाता है कि वास्तव में साख का निर्माण बैंक करते हैं या जमाकर्ता (Depositors) करते हैं। वाल्टर लीफ और कैनन (Walter Leaf and Cannan) के विचार से बैंक स्वयं साख का निर्माण नहीं करते। साख का निर्माण वास्तव में जमाकर्ता करते है क्योंकि जमाकर्ता ही अपनी जमा द्वारा ही बैंकों को मौद्रिक साधन प्रदान करते हैं और बैंक इन जमाओं के एक भाग को लोगों को उधार दे है जिससे साख का निर्माण होता है। अर्थात् यदि जमाकर्ता अपना धन बैंकों में जमा न करवाएँ तो बैंक साख का निर्माण नहीं कर सकेंगे। इसी बात को ध्यान में रखकर कैनन ने कहा है—"बैंकों द्वारा साख निर्माण की बात चन्द्रमा की रोशनी की भाँति है प्रत्येक व्यापारिक बैंकर जानता है कि वह साख मुद्रा अथवा अन्य वस्तुओं का निर्माता नहीं है। वरन् एक ऐसा व्यक्ति है जो व्यक्तियों से जिनके पास साधन है, अन्य व्यक्तियों को जो उनका प्रयोग कर सकते हैं ऋण दिलाने की सुविधा प्रदान करते हैं।" (The talk of credit creation by banks is as moon-shine and that

every practical banker knows that he is not a creator of credit or money or anything else but a person who faciliates the lending of resources by the people who have them, to those, who can use them—Dr. Cannan).

परन्तु आधुनिक अर्थशास्त्रियों के अनुसार वाल्टर लीफ और कैनन का यह विचार उचित नहीं है क्योंकि बैंक प्राथमिक जमा से अधिक रुपया उधार देते है। अत: यह मानना ही होगा कि बैंक साख का निर्माण करते हैं। हार्ट विदर्स के अनुसार, "ऋण जमाओं को जन्म देते हैं और उनके निर्माण का श्रेय बैंकों को है।" (Loans make deposits and the initative of creating them goes to the banks—Hartley withere)

4. सारांश (Summary)

निष्कर्ष के रूप में हम सकते है कि व्यापारिक चैक ऋण के द्वारा साख का निर्माण करते हैं। साख निर्माण बैंकों की अद्‌भुत शक्ति है। जिससे सभी आर्थिक क्रियाओं को प्रोत्साहन मिलता है। वास्तव में इस प्रक्रिया में व्यापारिक बैंक केवल पैसे के व्यापारी नहीं रहे बल्कि पैसे के निर्माता बन गए। अर्थशास्त्रियों में इस सम्बन्ध में मतभेद पाया जाता है कि साख का निर्माण बैंक करते हैं या जमाकर्ता। वालटर लीफ एवं कैनन का यह विचार है कि बैंक स्वयं साख का निर्माण नहीं करते बल्कि यह काम जमाकर्ता करते हैं। परन्तु आधुनिक अर्थशास्त्रियों के अनुसार, वाल्टर लीफ एवं कैनन का यह विचार उचित नहीं है। क्योंकि बैंक प्राथमिक जमा से अधिक रुपया उधार दे देते हैं। इसलिए यह मानना ही पड़ेगा कि बैंक साख का निर्माण करते हैं।

5. प्रस्तावित पुस्तकें (Suggested Readings)

1. भारतीय वित्तीय प्रणाली—टी. आर. जैन एवं ओ. पी. खन्ना।
2. भारतीय वित्तीय प्रणाली—कुलदीप गुप्ता एवं डॉ. राजकुमार।

6. नमूने के प्रश्न (Self-Assessment Questions)

1. साख निर्माण से क्या अभिप्राय है।
   (What is meant by credit creation ?)
2. साख निर्माण प्रक्रिया की व्याख्या करें।
   (Explain the credit creation process)

Paper : BC - 206 (i) Indian Financial System **Revised by : M.L. Singla**

Lesson No. : 8

(DEVELOPMENT : BANKS IN INDIA)

विषय-सामग्री (Contents)

1. परिचय (Introduction)
2. उद्देश्य (Objective)
3. प्रस्तुतिकरण (Presentation)
   - 3.1 विकास बैंक का अर्थ एवं परिभाषा (Meaning and Definition of Development Bank)
   - 3.2 विकास बैंकिंग के उद्देश्य (Objectives of Development Banks)
   - 3.3 विकास बैंकों की विशेषताएँ (Characteristics of Development Banks)
   - 3.4 विकास बैंकों की आवश्यकता (Need for Development Banks)
   - 3.5 विकास बैंकों का विकास (Evolution of Development Banks)
     - 3.5.1 भारतीय औद्योगिक वित्त निगम लिमिटेड (Industrial Finance Corporation of India Limited)
     - 3.5.2. राज्य वित्त निगम (State Finance Corporations)
     - 3.5.3 भारतीय औद्योगिक विकास बैंक (Industrial Developoment Bank of India)
     - 3.5.4 भारतीय लघु उद्योग विकास बैंक (Small Industries Development Bank of India-SIDBI)
     - 3.5.5 भारतीय विनियोग केन्द्र (Indian Investment Centre)
     - 3.5.6 भारतीय औद्योगिक निवेश बैंक लिमिटेड (Industrial Investment Bank of India Limited)
     - 3.5.7 राष्ट्रीय आवास बैंक (National Housing Bank-NHB)
   - 3.6 आलोचनात्मक मूल्यांकन (Critical Evaluation of Industrial Banks)
   - 3.7 विकास बैंकों के लिए नरसिंम्हम कमेटी की सिफारिशें
4. सारांश (Summary)
5. प्रस्तावित पुस्तकें (Suggested Readings)
6. नमूने के प्रश्न (Self-Assessment Questions)

1. परिचय (Introduction) :

भारत में विकास बैंक विकास परक विशिष्ट संस्थाएँ है जो विभिन्न प्रकार के उद्यमों को उन्नत होने का अवसर देती हैं। ताकि वे संकल्पना से आशाओं की पूर्ति की ओर अग्रसर हो सकें। ये बैंक निजी उद्यमियों को मध्यकालीन तथा दीर्घकालीन वित्त प्रदान करते हैं तथा देश के आर्थिक विकास में महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं।

2. उद्देश्य (Objective) :

इस पाठ का उद्देश्य आपको भारत में विकास बैंकों की स्थापना के उद्देश्य, आर्थिक विकास हेतु इनकी आवश्यकता तथा भारत में स्थापित किए गए विभिन्न बैंकों के कार्यों, उद्देश्यों तथा प्रगति से अवगत करवाना है। अत: इस पाठ का अध्ययन करने के बाद आप भारत में स्थापित विभिन्न प्रकार के विकास बैंकों के देश के आर्थिक विकास में योगदान को जान सकेंगे तथा इसके साथ-साथ इन बैंकों के कार्यकरण के दोषों एवं इन्हें कैसे दूर किया जा सकता है इत्यादि के बारे में समझ सकेंगे।

3. प्रस्तुतिकरण: (Presentation) :

इस पाठ में विकास बैंक के अर्थ एवं परिभाषा, भारत में इनकी स्थापना के उद्देश्यों, आर्थिक विकास में इनके योगदान एवं इनके सामने आने वाली समस्याओं (कार्यकरण के दोषों) की व्याख्या नीचे दिए गए शीर्षकों के अन्तर्गत की गई है।

3.1 विकास बैंक का अर्थ एवं परिभाषा (Meaning and Definition of Development Bank):

विलियम डायमण्ड के अनुसार, ''विकास बैंक वह बैंक है जो विकास उद्देश्यों को प्राथमिकता देता है।''

डॉ. के. वी. प्रभाकर के अनुसार, ''विकास बैंक बहुउद्देशीय संस्था है जो उद्यमीय जोखिमों को सहन करती है। औद्योगिक वातावरण के साथ समयानुसार अपने दृष्टिकोण में परिवर्तन लाती है और तीव्र आर्थिक विकास को लाने के लिये नई औद्योगिक परियोजनाओं को प्रोत्साहन देती है।''

विकास बैंक विकास परक है तथा व्यापारिक बैंक से कई प्रकार से भिन्न होते हैं।

1. विकास बैंक मध्यकालीन तथा दीर्घकालीन वित्त प्रदान करते हैं क्योंकि इनका मुख्य उद्देश्य उद्योगों का आधुनिकीकरण तथा औद्योगिक इकाइयों की बन्धी परिसम्पत्तियों में निवेश करना होता है। जबकि व्यापारिक बैंक अल्पकालीन ऋण देते हैं 'क्योकि इनका मुख्य उद्देश्य व्यापार तथा उद्योग को कार्यशील पूंजी प्रदान करना होता है।

2. व्यापारिक बैंक लोगों की जमाओं को स्वीकार करते है जबकि विकास बैक जनता की जमाओं को स्वीकार नहीं करते।

3. व्यापारिक बैंक पारंपरिक दृष्टि से सुरक्षापरक है जबकि विकास बैंकों का दृष्टिकोण परियोजना परक है।

4. विकास बैंक औद्योगिक इकाइयों के प्रतिष्ठानों को न केवल वित्त प्रदान करते हैं बल्कि उनके साथ निकट सम्पर्क बनाये रखते हैं। उनका निरीक्षण करते हैं। मार्गदर्शन करते हैं और समयानुसार परामर्श भी देते हैं। जबकि व्यापारिक बैंक उद्यमियों को केवल वित्त प्रदान करते हैं।

5. व्यापारिक बैंक ने अब परियोजना वित्त के व्यवयास में भी परिवेश कर लिया है और विकास बैंकों के साथ मिलकर मियाद ऋण देना शुरू किया है। इसी प्रकार से विकास बैंकों ने भी अल्पकालीन

उद्देश्यों के लिये मुद्रा उधार देनी शुरू कर दी है। अतः विकास बैंक व्यापारिक बैंकों से अलग विशिष्ट भूमिका निभाते हैं तथा आर्थिक विकास की गति तीव्र करते हैं। ये बैक विकास से जुड़ी सभी सेवाएँ प्रदान करते हैं। जैसे जोखिम पूंजी का प्रावधान, नये निर्गमों की हामी भरना, निवेश परियोजनाओं की पहचान, परियोजना रिपोर्टों का मूल्यांकन करना, बाजार सूचना, प्रबन्ध सेवाएँ इत्यादि ताकि आर्थिक विकास की दर को बढ़ाया जा सके।

3.2 विकास बैंकिंग के उद्देश्य (Objectives of Development Banks):

1. विभिन्न क्षेत्रों में विकास के एजेण्ट के रूप में सेवा प्रदान करना।
2. आर्थिक विकास को तेज गति से बढ़ाना।
3. उद्यमीय कौशल का विकास।
4. अधिक रोजगार के अवसर प्रदान करना तथा उत्पादन में वृद्धि करना।
5. तेज गति से औद्योगीकरण।
6. ग्रामीण विकास की गति को तेज करना।
7. महत्त्वपूर्ण परियोजनाओं के लिए वित्त प्रबन्ध करना।
8. छोटे पैमाने के उद्योगों मे वित्त प्रबन्ध करना।
9. निर्यातों के लिये वित्त प्रबन्ध करना।
10. बैंकिंग प्रणाली का विकास।
11. प्रशासकीय तथा तकनीकी सहायता प्रदान करना।
12. निवेश सम्बन्धी तथा बाजार सम्बन्धी अनुसंधान तथा सर्वेक्षण को कार्यक्रम में लेना।

3.3 विकास बैंकों की विशेषताएँ (Charactestics of Development Banks):

विकास बैंकों की विशिष्ट विशेषता प्रोन्नति, अभिप्रेरणा, प्रोत्साहन और उत्तेजना के चारों ओर घूमती है। एक विकास बैंक एक जीवित संगठन की भांति है जो अपने सामाजिक तथा आर्थिक वातावरण के लिये प्रतिक्रिया के लिये प्रतिक्रिया प्रदर्शित करता है और इसकी सफलता उस वातावरण के प्रति तत्परता पर निर्भर करती है। प्रोन्नति को जारी करना उद्यमी की क्रिया का एक महत्त्वपूर्ण अंग है। अतः हम विकास बैंक को एक संस्थागत उद्यमी कह सकते हैं। जो उद्यम निर्माण की प्रक्रिया में व्यस्त रहता है विकास बैंक की मुख्य विशेषताएँ निम्नलिखित हैं :

1. यह एक बहुउद्देश्य वित्तीय संस्था है।
2. यह आर्थिक विकास की प्रक्रियां को बढ़ावा देता है।
3. यह विकास से सम्बन्धित संस्थागत नवप्रवर्तन लाता है।
4. यह विकास उद्यमियों को प्रेरणाओं के पैकेज का प्रबन्ध करता है।
5. यह अन्य वित्त संस्थाओं को पुनः वित्त प्रदान करता है

6. विकास बैंक न केवल भूतकाल और वर्तमान से सम्बन्धित है बल्कि भविष्य को भी ध्यान में रखकर कार्य करता है।

7. एक विकास बैंक विकास परियोजनाओं की पहचान से लेकर प्रबन्ध तक की सेवाओं का एक पैकेज प्रदान करता है।

8. एक विकास बैंक एक कड़ी है जो आर्थिक विकास को चहुंमुखी फैलाता है।

अत: विकास बैंक विकास परक होते हैं जिनका मुख्य उद्देश्य उद्यमीय कौशल को बढ़ाना तथा-उद्यमियों के वित्त के साथ-साथ सभी प्रकार की सेवाएँ प्रदान करना होता है ताकि तेज औद्योगिकरण द्वारा आर्थिक विकास के लक्ष्य को प्राप्त किया जा सके।

3.4 विकास बैंकों की आवश्यकता (Need for Development Banks) :

भारतीय अर्थव्यवस्था एक मिश्रित तथा नियोजनात्मक अर्थव्यवस्था है इसके योजनात्मक विकास तथा विविधीकरण के युग ने विकास बैकों की स्थापना की आवश्यकता को महसूस कराया। अनेकों कारणों से भारत के योजनात्मक विकास में बैंकों की जरूरत है। ये कारण निम्नलिखित हैं:

1. **पूंजी की आवश्यकता :** वर्तमान बैंकिंग प्रणाली केवल अल्पकालीन पूंजी आवश्यकताओं की पूर्ति करती है जबकि बड़े पैमाने के उद्योगों की स्थापना, छोटे पैमाने के आधुनिकीकरण के लिये, मध्यकालीन तथा दीर्घकालीन निवेश की आवश्यकता होती है। उचित ब्याज की दर पर मध्मकालीन तथा दीर्घकालीन पूंजी उपलब्ध कराने के लिये विशेष संस्थाओं की आवश्यकता थी। इसीलिए विकास बैंकों की स्थापना इसी उद्देश्य को मध्य नजर रखते हुए हुई थी।

2. **बचतों का मार्ग निर्देशन :** भारत में बचतों का मुख्य स्रोत घरेलु बचतें हैं। इन छोटी-छोटी घरेलु बचतों को एकत्रित करने के लिये तथा उत्पादक निवेश में ले जाने के लिये विशेष बन्दोबस्त की जरूरत थी। वर्तमान वित्तीय संस्थाएँ यह कार्य-कुशलतापूर्वक नहीं कर पा रही थी। इसके लिए ऐसे विकास बैंकों की आवश्यकता थी जो इन छोटी-छोटी घरेलु बचतों को एकत्रित करके लाभकारी उत्पादक कार्यों में लगा सकें।

3. **औद्योगिक वित्त :** आधारभूत तथा भारी उद्योग किसी भी अर्थव्यवस्था के विकास के लिये अत्यंत आवश्यक होते हैं। भारत में इन उद्योगों के विकास के लिये न केवल भारी वित्तीय समर्थन बल्कि विशिष्ट वित्तीय प्रबन्ध की आवश्यकता भी थी। अत: भारत में सशक्त औद्योगिक आधार के लिये विकास बैंकों की आवश्यकता महसूस हुई। ये बड़े पैमानों के उद्योगों की वित्तीय जरूरतों को भी पूरा कर सकते हैं तथा वित्तीय प्रबन्ध की देखभाल कर सकते हैं।

4. **छोटे पैमाने के उद्योंगों का आधुनिकीकरण :** लघु उद्योगों को अपना आधुनिकीकरण करने के लिये सस्ते और पर्याप्त मध्यकालीन वित्त की आवश्यकता होती है। देश में विकास बैंकों के उदय होने का एक कारण यह भी है कि लघु उद्योग विकास बैंक लघु क्षेत्र के उद्योगों की वित्तीय आवश्यकताओं की पूर्ति करते हैं।

5. **कृषि :** बिक्री योग्य खेती तथा आधुनिक खेती उपकरण तथा खेती के रूपान्तरण के लिये सही समय तथा सस्ती ब्याज की दर पर मध्यम तथा दीर्घकालीन वित्त की आवश्यकता होती है। अत: कृषि वित्त की इन जरूरतों के लिये विकास बैंक स्थापित किये गए।

6. **आर्थिक विकास :** व्यापार पर विकास के अन्तर्गत नियोजन को आयात प्रतिस्थापना से निर्यात प्रोत्साहन की ओर मोड़ दिया है। अत: निर्यातपरक उद्योगों के विकास में सस्ती दर पर बड़ी मात्रा

में निवेश किया जायेगा। इसके लिये विदेशी पूंजी की भी नियमित पूर्ति आवश्यक है। वर्तमान वित्तीय संस्थाएँ विकास की निर्यातपरक व्यूह रचना के अनुरूप नहीं हैं इसीलिये वर्तमान वित्तीय संस्थाओं की इस कमी को पूरा करने के लिये विकास बैंक दर और आयात निर्यात बैंक की स्थापना की गई।

7. **पूंजी बाजार :** भारत में पूंजी बाजार अल्पविकसित है यह वर्तमान औद्योगिक संरचना की वित्तीय आवश्यकताओं को कुशलता एवं प्रतियोगी रूप से पूरा करने में सक्षम नहीं है। पूंजी बाजार की अल्पविकसततां के कारण पूंजी निर्माण का अभाव पाया जाता है। इसके फलस्वरूप ही देश में विकास बैंकों का उदय हुआ।

8. **क्षेत्रीय असन्तुलन :** आर्थिक विकास के दृष्टिकोण से भारत में बहुत अधिक क्षेत्रीय असमानताएँ पाई जाती है कुछ क्षेत्र अधिक विकसित है। कुछ क्षेत्र बहुत ही पिछड़े हुए हैं। पिछड़े क्षत्रों के विकास के लिये कम ब्याज की दर पर अधिक निवेश की आवश्यकता है। यह आवश्यकता विकास बैंक ही पूरा कर सकते हैं। अतः भारत में फैला दूर तक क्षेत्रीय असुन्तलन एक ऐसा महत्त्वपूर्ण तत्त्व है जो विकास बैंकों की स्थापना के लिये आवश्यक है।

9. **निजीकरण :** नई औद्योगिक नीति के अन्तर्गत भारत में निजीकरण की नीति को अपनाया गया। निजीकरण यानि सार्वजनिक क्षेत्र के व्यापारिक निगमों को निजी क्षेत्र में हस्तांतरण करना। नीजी क्षेत्र के पास भी सीमित साधन पाये जाते है। अतः निजी क्षेत्र के लिये पर्याप्त मात्रा में वित्त प्रबन्ध करने के लिये विकास बैंकों की स्थापना आवश्यक हो गई है।

10. **विश्वीकरण :** आर्थिक सुधारों के अन्तर्गत भारतीय अर्थव्यवस्था में विश्वीकरण की नीति को अपनाया गया। विश्वीकरण के युग में बहुराष्ट्रीय कम्पनियों तथा अन्य विदेशी भागीदारों से प्रतियोगिता की समस्या भारतीय उद्योग के लिय गम्भीर समस्या बनी हुई है। ये उद्योग इस प्रतियोगिता में तभी जीवित रह सकते है और काम कर सकते हैं जब ये प्रतियोगी कीमतों पर उच्च क्वालिटी की वस्तुएँ बना सकें। अतः विकास बैंक एक ऐसी वित्तीय संस्था है जो भारतीय उद्योगों में प्रतियोगिता उत्पन्न कर सकते हैं। ये बैंक उद्योगों को पर्याप्त वित्त उचित समय व अनुकूल शर्तों पर उपलब्ध करा सकते हैं। प्रबन्धकीय निपुणता उपलब्ध करा सकते हैं ताकि भारतीय अर्थव्यवस्था भी विश्वीकरण के लाभों को उठा सके।

अतः कृषि तथा उद्योगों के विकास के लिये बैंक एक महत्त्वपूर्ण भूमिका निभा सकते हैं। देश के औद्योगिक ढाँचे को सबल बनाने में योगदान दे सकते हैं।

3.5 विकास बैंकों का विकास (Evolution of Development Banks) :

स्वतन्त्रता के पश्चात् औद्योगिक विकास की प्रक्रिया में विकास बैंको की स्थापना की गई। सन् 1948 में भारत का पहला विकास बैंक भारतीय औद्योगिक विकास निगम स्थापित हुआ। यह भारत में विकास बैंकिंग के युग की शुरूआत थी। इसके बाद सन् 1951 में भारत सरकार ने राज्य वित्त निगम स्थापित करने के विचार से राज्य वित्त निगम कानून 1951 पारित किया। विश्व बैंक की प्रेरणा से 1955 में भारतीय औद्योगिक साख और निवेश निगम की स्थापना की। इसे एक निवेश संस्था के रूप में स्वीकार किया गया। इसके पश्चात् 1964 में भारत सरकार ने भारतीय औद्योगिक विकास बैंक की स्थापना की। ताकि यह औद्योगिक वित्त के क्षेत्र में एक उच्चतम संस्था के रूप में कार्य कर सके। भारत में निम्नलिखित बैंकों की स्थापना की गई :

भारतीय औद्योगिक वित्त निगम लिमिटेड (1948)

राज्य वित्त निगम (1951)

भारतीय औद्योगिक साख और निवेश निगम (1955)

भारतीय औद्योगिक विकास बैंक (1964)

भारतीय औद्योगिक निवेश बैंक लिमिटेड (1971)

भारतीय लघु उद्योग विकास निगम बैंक (SIBI) (1989)

कृषि तथा ग्रामीण विकास के लिये राष्ट्रीय बैंक (NABARD) (1982)

भारतीय आयात-निर्यात बैंक (Exim Bank) (1987)

भारतीय निवेश केन्द्र (1961)

राष्ट्रीय आवास बैंक (1988)

इन संस्थाओं ने न केवल वित्तीय सहायता प्रदान की है। बल्कि नये उद्योगों की स्थापना को काफी आसान बना दिया है। उद्योगों को तकनीकी सहायता प्रदान की गई है। विशिष्ट प्रशिक्षण का प्रबन्ध किया है। औद्योगिक विकास के लिये विदेशों पूंजी का प्रबन्ध भी किया है। इन में से कुछ बैंकों की कार्य प्रणाली की विधियों की समीक्षा निम्नलिखित है :

3.5.1 भारतीय औद्योगिक वित्त निगम लिमिटेड (Industrial Finance Corporation of India Limited) :

केन्द्रीय बैंकिंग जांच समिति ने भारत में एक औद्योगिक वित्त निगम की स्थापना का सुझाव दिया था। अतः स्वतन्त्रता प्राप्ति से पहले इस सुझाव को कार्यान्वित नहीं किया गया लेकिन 1 जुलाई, 1948 को औद्योगिक वित्त निगम एक्ट के अन्तर्गत इस निगम की स्थापना हुई। इस एक्ट में 1964, 1972 तथा 1980 में कुछ संशोधन किये गए तथा 1 जुलाई, 1993 में इसे पब्लिक लिमिटेड कम्पनी बना दिया गया।

उद्देश्य (Objectives)

इस निगम की स्थापना का मुख्य उद्देश्य निजी क्षेत्र, संयुक्त पूंजी, कम्पनियों, होटल, उद्योगों, खानों तथा जहाजरानी को मध्यकालीन तथा दीर्घकालीन ऋण प्रदान करना है।

सहायता के रूप (Form of Assistance) :

यह निगम कई प्रकार से वित्तीय सहायता देता है

1. अधिकतम 25 वर्षों के लिये ऋण देना
2. शेयर तथा डिबेन्चरों का अभिगोपन
3. विदेशी मुद्रा में ऋण
4. स्टोंक व शेयर खरीदना
5. मशीनें खरीदने के लिये ऋण देना
6. मर्चेन्ट बैंकिंग का कार्य करना
7. पिछड़े इलाकों के लिये शुरू की गई परियोजनाओं के लिये ऋण देना।

पूँजी (Capital) :

इस निगम की अधिकृत पूंजी 10 करोड़ रूपये थी जो पाँच–पाँच हजार रूपये के बराबर हिस्सों में बंटी थी। 1999-2000 में इस निगम की शेयर पूंजी 1000 करोड़ थी। ये शेयर निगम के कर्मचारियों तथा जनता में बेचे गये। अतः निगम के शेयर IDBI, LIC, GIC, UTI सार्वजनिक क्षेत्र की संस्थाओं तथा जनता के पास हैं। RBI तथा भारत सरकार ने 1964 में IDBI की स्थापना के बाद अपने हिस्से IDBI को हस्तांतरित कर दिये। यह निगम निम्नलिखित साधनों से पूंजी प्राप्त कर सकता है :

1. बाजार में ऋणपत्र बेचकर
2. रिजर्व बैंक से उधार
3. भारत सरकार से कर्ज
4. विश्व बैंक या अन्य अन्तर्राष्ट्रीय संस्थाओं से विदेशी मुद्रा में ऋण
5. आम जनता या राज्य सरकार से ऋण
6. शेयर बेचकर

कार्यों की प्रगति (Progress) :

IFCI ने 2001-02 में 780 करोड़ तथा 1076 करोड़ रूपये के ऋणों की स्वीकृति तथा वितरण किया।

1. निजी क्षेत्र को कुल ऋणों का 85.4 प्रतिशत, संयुक्त क्षेत्र को 5.4 प्रतिशत, सार्वजनिक क्षेत्र को 7 प्रतिशत तथा सहकारी क्षेत्र को 2.2 प्रतिशत ऋण प्रदान किये।
2. 1995 में IFCI ने दो स्कीमों को शुरू किया वे है निगम ऋण जिसकी पुनः भुगतान की अधिकतम अवधि 5 वर्ष और एक वर्ष की अवधि वाला अल्पकालीन ऋण है।
3. व्यापार केन्द्रों, वाणिज्य और भवन कम्पलैक्सों के निर्माण के लिये मध्यकालीन वित्त का भाग प्रदान करना शुरू कर दिया।
4. 1998-99 में IFCI ने 1892 करोड़ रूपये के बाण्ड्स जारी किये।

विशेषताएँ :

इस निगम की कार्य प्रणाली की मुख्य विशेषताएँ इस प्रकार है : 1. अधिकांश ऋण खाद, सीमेन्ट, कागज, चीनी, कपड़ा उद्योगों को दिये जाते हैं। 2. ऋणों के वितरण में महाराष्ट्र का प्रथम स्थान है। 3. ऋणों की मात्रा 10 लाख से लेकर 1 करोड़ रूपये तक रही है। 4. सामान्यतः ऋण 12 वर्षों तक तथा अधिकतम 25 वर्षों तक दिये जा सकते हैं। 5. निगम का अभिगोपन कार्य विशेष सफल नहीं हुआ। 6 तकनीकी सलाह के लिये सलाह सेवा आरम्भ की।

आलोचनाएँ :

इस निगम की आलोचना कई कारणों से की जाती है जैसे कि ऋण देते समय निगम के अधिकारियों ने कई बार पक्षपात किया। इसी कारण मूलधन तथा ब्याज की वापसी में कठिनाई महसूस हुई। ऋण कुछ ही ख्याति प्राप्त उद्योगों को दिये जाते हैं। सामान्यतः ऋणों की स्वीकृति तथा वितरण में देरी हो जाती है ब्याज की दरें अधिक होती हैं। प्रबन्ध कुशतापूर्वक नहीं किया जाता। आधारभूत तथा पूंजीगत वस्तुओं के उद्योंगों को निगम ने बहुत ही कम वित्तीय सहायता दी थी।

3.5.2 राज्य वित्त निगम (State Finance Corporation) :

SFC की स्थापना भारत सरकार ने 1951 में बने राज्य वित्त निगम एक्ट के अन्तर्गत हुई। यह निगम विभिन्न राज्यों के लघु उद्योगों को दीर्घकालीन ऋण प्रदान करेगा। सबसे पहले पंजाब सरकार ने ऐसा निगम स्थापित किया। आजकल 26 निगम कार्य कर रहे हैं।

उद्देश्य (Objectives) :

यह निगम लघु तथा मध्यम आकार के उद्योगों को दीर्घकालीन ऋण प्रदान करता है। ये उद्योग पब्लिक व प्राइवेट कम्पनियाँ, सहकारी समितियाँ, सांझेदारी वाली इकाईयाँ हो सकती है।

पूंजी (Capital) :

एक्ट के अनुसार SFC की पूंजी कम से कम 5 करोड़ रूपये अवश्य होनी चाहिए। साधारण जनता के साथ-साथ राज्य सरकारों RBI अनुसूचित बैंक तथा बीमा कम्पनियाँ इनके शेयर खरीद सकती है। यह बाण्ड तथा डिबेन्चर बेचकर अपनी पूंजी बढ़ा सकते हैं।

कार्य (Functions) :

इन निगमों के मुख्य कार्य हैं :

1. यह निगम हर प्रकार के औद्योगिक संगठन छोटे व मध्यम स्तर के उद्योगों को ऋण देता है।
2. यह निगम निजी संस्थाओं को कुल राशि का 20% तक कर्जे दे सकता है।
3. ऋण अधिकतम 20 वर्षों तक दे सकता हैं।
4. यह निगम सेवा उद्योगों को भी कर्जे देते है।
5. ये निगम उन उद्योगों के शेयर खरीद सकते है जो धन की कमी के कारण ठीक प्रकार से काम नहीं कर पा रहे।

प्रगति (Progress) :

सन् 2001 में इन निगमों की संख्या 26 थी तथा 2720 करोड़ रूपये के ऋण स्वीकार किये इनमें से छोटे उद्योगों को 77% ऋण स्वीकार किये गये।

आलोचना :

इन निगमों द्वारा स्वीकृत ऋण काफी समय बाद दिये जाते हैं। ब्याज की दर बहुत अधिक होती है। इन निगमों के पास पूंजी की कमी पायी जाती है तथा ऋणों की जमानत अधिक लेते हैं। जिससे निम्न तथा मध्यम वर्ग इससे लाभ नहीं उठा पाते। इन्हें लघु उद्योगों को ऋण देते समय कठिनाइयों का सामना करना पड़ता है।

3.5.3 भारतीय औद्योगिक विकास बैंक (Industrial Development Bank of India)

भारतीय औद्योगिक विकास बैंक की स्थापना 1 जुलाई, 1964 को हुई। यह विकास बैंक भारत सरकार द्वारा शुरू किया गया तथा रिजर्व बैंक इसका सहायक था। सन् 1976 में इसको रिजर्व बैंक से स्वतन्त्र कर दिया गया है। सन् 1995 में इस बैंक के शेयरों को जनता में भी बेचा गया। अब तक 49% शेयर जनता में बेचे जा चुके हैं।

उद्देश्य (Objectives) :

1. इसका मुख्य उद्देश्य निजी तथा सार्वजनिक दोनों क्षेत्रों में वस्तु निर्माण, खान तथा सेवा सम्बन्धी उद्योगों को वित्तीय सहायता देना है।
2. ये शेयरों में प्रत्यक्ष निवेश करता है।
3. उद्योगों द्वारा जारी की गई प्रतिभूतियों की हामी भरता है।
4. औद्योगिक संस्थाओं द्वारा दिए गए ऋणों की गारन्टी देता है।
5. उद्योगों को पुनर्वित सुविधा प्रदान करता है।
6. बैंक विनियोग या अनुसंधान सर्वेक्षण करता है।
7. आवश्यकता पड़ने पर केन्द्र सरकार से बिना ब्याज पर ऋण ले सकता है।
8. पिछड़े प्रदेशों का औद्योगिक विकास करना।
9. लघु तथा मध्यम उद्योगों को प्रोत्साहन देना।
10. निर्यात प्रोत्साहन तथा आयात प्रतिस्थापन के लिये वित्तीय सहायता देना।

प्रबन्ध :

इस बैक का प्रबन्ध एक संचालक मण्डल द्वारा किया जाता है। जिसके 24 सदस्य होते हैं। अध्यक्ष की नियुक्ति केन्द्र सरकार, उपाध्यक्ष की नियुक्ति रिजर्व बैंक 18 सदस्य केन्द्र सरकार तथा 4 सदस्यों की नियुक्ति शेयर धारक करते हैं।

पूंजी :

सन् 2002 में इस बैंक की चुकता पूंजी 659 करोड़ रूपये थी। इस बैंक के पास 8307 करोड़ रुपये का रिजर्व फण्ड है इसने 38991 रुपये बाण्डस व डिबेन्चर बेचकर इकट्ठे किये हैं।

प्रगति (Progress) :

सन् 2001-02 में IDBI ने 16034 करोड़ रूपये तथा 11,158 करोड़ के ऋणों को स्वीकारा तथा वितरण किया। इस बैंक ने कई नई संस्थाओं की स्थापना की 1. Credit Analysis and Research Ltd. 2. Investors Services of India Limited 1995 में ये बैंक एक व्यापारिक बैंक IDBI Bank Limited तथा एक म्युचुअल फण्ड IDBI Mutual Fund Limited की स्थापना की है। IDBI प्रत्यक्ष तथा अप्रत्यक्ष-रूप से विभिन्न वित्तीय: संस्थाओं को ऋण प्रदान करता है।

मूल्यांकन (Evaluation) :

इस बैंक का देश के उद्योगों के विकास तथा निर्यात प्रोत्साहन में महत्त्वपूर्ण योगदान रहा। यह बैंक देश की सबसे बड़ी विशिष्ट संस्था है। इस बैंक ने बड़े उद्योगों के साथ-साथ लघु उद्योगों तथा पिछड़े क्षेत्रों के औद्योगिक विकास के लिये विशेष रूप से प्रयास किये हैं।

3.5.4 भारतीय लघु उद्योग विकास बैंक
(Small Industries Development Bank of India) (SIDBI) :

भारतीय लघु उद्योग विकास बैंक की स्थापना 1989 में IDBI के पूर्ण स्वामित्व में उसकी सहयोगी संस्था के रूप में की गई थीं। इस बैंक ने 2 अप्रैल 1990 से अपना काम करना शुरू किया। इसकी प्रदत्त पूंजी–450 करोड़ रूपए की है तथा सारी पूंजी IDBI में निवेश की है।

उद्देश्य (Objective) :

इस बैंक का मुख्य उद्देश्य लघु उद्योगों को वित्तीय तथा गैर-वित्तीय सहायता प्रदान उपलब्ध कराना है। इस बैंक के मुख्य कार्य इस प्रकार हैं :

1. तकनीकी प्रगति एवं आधुनिकीकरण उपाय शुरू करना।
2. लघु क्षेत्र के उत्पादन को देश तथा विदेशी बाजारों में बिक्री के लिये सहायता करना।
3. श्रम प्रधान उद्योगों को दिए गए ऋणों का पुनर्वितीयन करना, उदार ऋण तथा लीज सेवायें उपलब्ध कराना है।

प्रगति (Progress)

सन् 2001-02 में बैंक ने 8874 करोड़ रूपये के ऋणों को स्वीकृति दी तथा 6285 करोड़ रूपये के ऋणों को वितरित किया गया। SIDBI व्यापारिक बैंकों को आधुनिकीकरण के लिये 50 लाख रूपये तक के ऋण देगा। एकल खिड़की योजना के अन्तर्गत 50 लाख रूपये का पुनर्वित्त किया जाएगा। अपने कोषों का 50% तक SIDBI सार्वजनिक क्षेत्र संस्थाओं तथा निजी कम्पनियों द्वारा स्थापित साहस पूंजी कोषों में भाग लेगा। यह कोष लघु क्षेत्र के उद्योगों को वित्त प्रदान करने के लिये अर्पित करेगा।

3.5.5 भारतीय विनियोग केन्द्र (Indian investment Centre) :

इसकी स्थापना 1961 में की गई। मुख्य कार्यालय अमेरिका में है।

उद्देश्य (Objectives) :

इसका मुख्य उद्देश्य भारतीय उद्योगपतियों को विदेशी पूंजी तथा औद्योगिक तकनीक प्राप्त करने में सहायता करना है। भारतीयों को विदेशी सहयोग में नवीन उपक्रम स्थापित करने में मदद करना है।।

प्रगति (Progress) :

अब तक उपलब्ध आंकड़ों के अनुसार भारतीय विनियोग केन्द्र विदेशी उद्योगपतियों तथा भारतीय उद्योगपतियों के सहयोग से केवल 10 संयुक्त उद्यम स्थापित करने में सफल रहा है। जो कि बहुत धीमी प्रगति हैं।

3.5.6 भारतीय औद्योगिक निवेश बैंक लिमिटेड
(Industrial Investment Bank of India Limited) :

इस संस्था की स्थापना अप्रैल 1971 में औद्योगिक पुनर्निर्माण निगम के रूप में की गई। इसकी प्रदत्त पूंजी 20 करोड़ रूपये थी। लेकिन 1997 में इसका नाम बदलकर भारतीय औद्योगिक निवेश बैंक लिमिटेड कर दिया गया। इसकी प्रदत्त पूंजी 1351 करोड़ रूपये है। इसका मुख्य उद्देश्य बीमार व बंद कारखानों

के पुननिर्माण के लिये आर्थिक सहायता देना है। सन् 2002 तक इसमें 8546 करोड़ रूपये का ऋण स्वीकृत किया गया तथा 5685 करोड़ रूपये के ऋणों का वितरण किया।

3.5.7 राष्ट्रीय बैंक (National Housing Bank (NHB) :

यह आवास वित्त की सबसे बड़ी संस्था है। इसकी स्थापना राष्ट्रीय आवास बैंक कानून 1987 के अन्तर्गत जुलाई 1988 में हुई। इस बैंक की अधिकृत पूंजी 500 करोड़ है। सन् 1999 में इसकी शेयर पूंजी 481 करोड़ रुपये थी।

उद्देश्य (Objectives) :

1. नए मकानों के निर्माण को प्रोत्साहन करना।
2. पुराने मकान का विस्तार तथा आधुनिकीकरण के लिए ऋण देना।
3. मलिन बस्तियों के विकास में सहायता।
4. कमजोर वर्ग के लोगों को अपना मकान बनाने, खरीदने के लिये दिये गए ऋणों का पुनर्वित्त करना।

कार्य (Functions) :

राष्ट्रीय आवास बैक-के मुख्य कार्य है—

1. **पुनर्वित्त—**यह सभी वित्तीय संस्थाओं को पुनर्वित की सुविधा प्रदान करता है।
2. **सीधे ऋण**—यह सार्वजनिक एजेंसियों को भूमि विकास, गृहनिर्माण तथा मलिन बस्तियों का विकास अधोसंरचना के विकास के लिये सीधे ऋण देता है।
3. **विकासात्मक कार्य**—यह बैंक आवास परियोजनाओं के विकास के लिये आवास वित्त कम्पनियों की शेवर पूंजी में निवेश करता है।
4. **दिशा निर्देश**—आवास वित्त कम्पनियों को जमा स्वीकार करने के संदर्भ में दिशा निर्देश भी देता है।

प्रगति (Progress) :

30 जून, 1999 तक कुल 29 आवास वित्त कम्पनियों ने इस बैंक से सहायता प्राप्त कर ली है। 1999 तक 4374 करोड़ की पुनर्वित्त सहायता दे चुका है। वित्त कम्पनियों की शेयर पूंजी में 12 करोड़ का निवेश किया। गृह निर्माण परियोजनाओं में 1999 में 64 करोड़ रूपये के ऋण दिये।

3.6 आलोचनात्मक मूल्यांकन :

स्वतन्त्रता के पश्चात् देश में स्थापित औद्योगिक बैंकों ने औद्योगिक विकास में महत्त्वपूर्ण योगदान दिया है। इन्हें विशिष्ट वित्तीय संस्थाएँ कहा जाता है। इन संस्थाओं में उद्योगों को केवल वित्तीय सहायता ही नहीं दी बल्कि नये उद्योगों की स्थापना को संभव बनाया है। तकनीकी सहायता दी है। नये उद्यमियों को प्रोत्साहित किया है तथा विदेशी वित्त का भी प्रबन्ध किया है। विकास बैंकों की मुख्य उपलब्धियाँ इस प्रकार हैं—

1. विकास बैंकों के निर्माण के पश्चात् उद्योगों के विकास के लिये पर्याप्त मात्रा में कोष उपलब्ध कराये हैं। मुख्य विकास बैंकों द्वारा सन् 2002 में 4,96,388 करोड़ रूपये के ऋणों को स्वीकृति प्रदान की।

2. विकास बैंक प्राथमिक बाजार में महत्त्वपूर्ण हामी भरने वाली संस्थाओं के रूप में उभरे है।

3. स्थिर ब्याज की दरों पर उद्योगों को दीर्घकालीन वित्त प्रदान करते हैं।

4. विकास बैंक विशिष्ट वित्तीय संस्थाओं को प्रोत्साहन देते है जैसे म्युचुअल फण्ड, मर्चेण्ट बैंकिंग इत्यादि।

5. विकास बैंक पिछड़े इलाकों के विकास के लिये भी प्रयत्नरत हैं। ये इन इलाकों में औद्योगिक विकास के लिये वित्तीय तथा गैर–वित्तीय सहायता उपलब्ध कराते हैं।

6. लघु उद्योगों के विकास में भी ये बैंक विशेष भूमिका निभा रहे हैं।

7. बीमार इकाईयों के लिए भी भारतीय औद्योगिक पुनर्निर्माण निगम लिमिटेड वित्तीय तथा गैर–वित्तीय सहायता देता है।

8. औद्योगिक क्षेत्र के समग्र विकास के लिये भी विकास बैंक तकनीकी सेवाएँ तथा परामर्श सेवाएँ उपलब्ध कराते हैं।

देश के औद्योगिक विकास में महत्त्वपूर्ण योगदान होते हुए भी इनके कार्यक्रय में निम्नलिखित दोष पाये जाते हैं :

1. **बड़े उद्यमियों को ऋण :** अधिकतर विशिष्ट वित्तीय संस्थाएँ बड़े तथा पहले से स्थापित उद्यमियों को ऋण देना पसन्द करती है। इसीलिये देश में नये उद्यमियों का पूर्ण रूप से विकास नहीं हो पाता।

2. **आर्थिक शक्ति का केन्द्रीयकरण :** इन संस्थाओं द्वारा मुख्य रूप से बड़े व मध्यम श्रेणी के उद्योगों को ऋण दिये जाते हैं। इस प्रकार धनवान व्यक्ति इन संस्थाओं से अधिक लाभ उठाकर और अधिक धनी बन जाते है। अत: अप्रत्यक्ष रूप से ये संस्थाएँ आर्थिक शक्ति के केन्द्रीयकरण का कारण बन जाती है।

3. **हामीदारों में कम रूचि :** ये संस्थाएँ अभिगोपन के कार्य में विशेष रुचि नहीं लेती जबकि ये कार्य विकास के लिय अत्यंत आवश्यक है।

4. **लघु उद्योगों की अवहेलना :** राज्य वित्त निगमों की स्थापना विशेष रूप से लघु उद्योगों की वित्त सम्बन्धी समस्याओं के लिये ही हुई थी। परन्तु ये निगम अधिकतर ऋण मध्यम श्रेणी के उद्योगों को दिये जाते हैं। लघु उद्योगों के पास न तो पर्याप्त जमानत होती है न ही प्रोजेक्ट रिपोर्ट वो आसानी से तैयार कर पाते, इसलिए लघु उद्योग इन संस्थाओं का विशेष लाभ नहीं उठा पाते।

5. **पूंजी की कमी :** इन संस्थाओं के पास पूँजी की कमी पाये जाने के कारण ये अपने उद्देश्यों को पूरी तरह प्राप्त नहीं कर पाते। इसलिए उद्योगों को महँगे वित्तीय साधनों पर निर्भर रहना पड़ता है।

6. **ऋणों की वापिसी में कठिनाइयाँ :** राजनैतिक या अन्य प्रभावों के कारण ऐसे उद्योगों को ऋण दे देते है या उनके शेयर खरीद लेते है जो घाटे में चल रहे होते हैं। अतः ऋणों की वापिसी कठिन हो जाती है। इसका औद्योगिक विकास पर बुरा प्रभाव पड़ता है।

3.7 विकास बैंकों के लिये नरसिम्हम कमेटी की सिफारिशें :

1. विकास बैंकों को अपने स्वामित्व प्रतिरूप को विस्तृत करना चाहिए।
2. विकास बैंकों को अपनी कार्यप्रणाली में अधिक स्वतन्त्रता मिलनी चाहिए।
3. केवल योग्य सक्षम व्यक्ति ही विकास बैकों के कार्यपालक नियुक्त किये जाने चाहिए।
4. औद्योगिक क्षेत्र के प्रतिनिधियों को विकास बैंकों में बोर्ड़ों में शामिल करना चाहिए।
5. राज्य स्तरीय वित्तीय संस्थाओं को अधिक स्वतन्त्र बनाना चाहिए। इन्हें अधिक कार्यकुशलता से कार्य करना चाहिए।
6. विकास बैंकों को घरेलू क्षेत्र की बचतों को एकत्रित करना चाहिए तथा बाजार दरों पर उधार देना चाहिए ।
7. वर्तमान संयुक्त कोषीय प्रणाली को त्याग देना चाहिए। IDBI को अपनी उच्चतम पुनर्वित भूमिका को लेना चाहिए। प्रत्यक्ष ऋण देने की प्रक्रिया को अलग संस्था को सौंप देना चाहिए।
8. निगम द्वारा ले लेने (Take over) के मामले में विकास बैंकों को वर्तमान प्रबन्ध को समर्थन देना चाहिए।

नरसिम्हम समिति ने सुझाव दिया है कि विकास बैंकों को विश्व में प्रतियोगी होना चाहिए। उन्हें अन्तर्राष्ट्रीय स्वीकृत प्रतिमानक को अपनाना चाहिए और पूंजी पर्याप्तता को पुनः स्थापित करना चाहिए।

4. सारांश (Summary) :

इस पाठ का अध्ययन करने से निष्कर्ष निकलता है कि देश के विभिन्न आर्थिक क्षेत्रों के विकास हेतु विभिन्न प्रकार के विकास बैंक स्थापित किए गए जैसे छोटे उद्योगों के विकास हेतु भारतीय लघु उद्योग विकास निगम बैंक, विदेशी व्यापार हेतु भारतीय आयात-निर्यात बैंक, आवासीय विकास हेतु राष्ट्रीय आवास बैंक, बड़े उद्योगों के विकास हेतु भारतीय औद्योगिक विकास बैंक आदि की स्थापना की। ये सभी बैंक अपने निर्धारित क्षेत्रों के विकास हेतु लगातार प्रयासरत है और इन सबकी वजह से देश की अर्थव्यवस्था को विकास की गति मिली है। हालांकि इन विकास बैंकों की कुछ कमियाँ भी है। जैसे लघु उद्योगों की अवहेलना, कोषों की कमी, असन्तुलित आर्थिक विकास, ऋणों की वापसी में कठिनाई आदि। परन्तु इन कमियों को दूर करने एवं आर्थिक विकास की गति को तेज करने हेतु नरसिम्इम समिति की सिफारिशों का अवलोकन करके लागू करने की आवश्यकता है।

5. प्रस्तावित पुस्तकें (Suggested Readings) :

1. भारतीय वित्तीय प्रणाली—टी. आर. जैन एवं ओ. पी. खन्ना।
2. भारतीय वित्तीय प्रणाली—कुलदीप गुप्ता एवं डॉ. राजकुमार।

6. नमूने के प्रश्न (Self Assessment) :

1. विकास बैंक क्या है? विकास बैंकों के उद्देश्यों तथा विशेषताओं का वर्णन करें।
   (What are the Development Banks ? describe the objectives and characteristics of Development Bank)

2. भारत में विकास बैंकों की आवश्यकता की व्याख्या करें।
   (Describe the need for the Development Bank in India)

3. विकास बैंकों का आलोचनात्मक मूल्यांकन कीजिए।
   (Make the critical Evaluation of Development Banks)

4. भारतीय औद्योगिक वित्त निगम लिमिटेड के उद्देश्य व कार्यों की व्याख्या करें।
   (Describe the objectives and functions of Industrial Finance Corporation of India)

5. भारत औद्योगिक विकास बैंक के प्रचालन का मूल्यांकन कीजिए।
   (Evaluation the operation of Industrial Development Bank of India)

6. भारत में राज्य वित्त निगमों पर टिप्पणी लिखें।
   (Write a note on State Finance Corporation in India)

7. राष्ट्रीय आवास बैंक के कार्यकरण का मूल्यांकन करें।
   (Evaluate the operation of National Housing Bank)